चौथा अध्याय

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी : सामाजिक न्याय का स्त्री संदर्भ

4.1 भूमिका : स्त्री संदर्भ : सामाजिक अन्याय

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी में सामाजिक न्याय को लेकर जो विमर्श चल रहे हैं वो हैं दलित विमर्श और स्त्री विमर्श। सामाजिक न्याय का सवाल आज विशेष रूप से दलितों और स्त्रियों से जुड़ा हुआ है। हमारे देश में दलित, स्त्रियां, आदिवासी, अल्पसंख्यक तथा वे तमाम गरीब और पिछड़े हुए लोग, जो ऐतिहासिक कारणों से उच्च वर्गों और वर्णों के वर्चस्व वाली व्यवस्था में निचले स्तरों पर जीते है, आर्थिक शोषण, राजनीतिक दमन, सांस्कृतिक उत्पीड़न और सामाजिक अन्याय के शिकार है। आज हिंदी साहित्य में सामाजिक न्याय को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में देखा जा रहा है। लिंग के आधार पर शोषित नारी, जाति तथा वर्ण के आधार पर तिरस्कृत दलित, धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक तथा आर्थिक आधार पर शोषित किसान तथा मजदूरों के हितों की रक्षा तथा समाज में समान अधिकारों के साथ उनकी प्रतिष्ठा ही सामाजिक न्याय का उद्देश्य है।

इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य अपने आप में विशिष्ट है क्योंकि यह साहित्य परंपरा की लीक से हटकर अपने युग तथा समाज के साथ कदमताल करते हुए गतिमान है। इस साहित्य में विविधता है। परंपरावादी लेखन तथा प्रगतिशील लेखन एक साथ चल रहे है। साहित्य में भी अनेक प्रकार के वर्ग बन गए है। एक वर्ग स्त्री अधिकारों के लिए लड़ रहा है। स्त्री के अधिकारों अर्थात् सामाजिक न्याय पर विस्तार से चर्चा हुई है। वर्तमान हिंदी साहित्य में कहानी विधा अनेक परिवर्तनों के अनुसार सकारात्मक व नकारात्मक रूप लेकर प्रकट हुई है। जिसमें स्त्री संदर्भ के न्याय व अन्याय दोनों पक्षों को विस्तारपूर्वक अभिव्यक्त किया है। स्त्री जो सदियों से ही पुरुष की गुलाम रही है। पुरुष प्रधान समाज में नारी आज शिक्षित व आत्मनिर्भर होकर भी कहीं न कहीं पितृसत्ता समाज के अधीन है। जिसमें नारी सदियों से जकड़ी हुई है परन्तु समय के परिवर्तन में स्त्री स्वयं जागरूक व

सचेत होकर गुलामी की बेड़ियों को तोड़ रही है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री सामाजिक न्याय व कानून व्यवस्था के तहत अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई है। वर्तमान में स्त्री सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व शिक्षित रूप से सशक्त होने के बावजूद भी अन्याय का शिकार बनती है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री संदर्भ के अंतर्गत स्त्री के न्याय व अन्याय पक्ष की विस्तारपूर्वक प्रस्तुति होगी कि वर्तमान में नारी अपने जीवन में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अधीन से कितनी मात्रा में मुक्त हो पायी है। सामाजिक न्याय जो समानता पर आधारित है। सामाजिक न्याय के अंतर्गत व्यक्तिगत हित और सामूहिक हित के संबंध को प्रभावित करने वाले विचारों और घटनाओं का मूल्यांकन किया जाता है। समाज में व्याप्त बुराई को समाप्त करना सामाजिक न्याय के अंतर्गत विद्यमान है। वर्तमान में हिंदी कहानियों में लेखक व लेखिकाओं ने सामाजिक न्याय को अपनी कहानियों में उल्लेख किया है। उन्होंने समाज के प्रत्येक पक्ष में हो रहे अन्याय को विस्तृत रूप से स्पष्ट किया है।

4.1.1 पितृसत्तात्मक व्यवस्था :

भारत में स्त्री स्वतंत्रता व समानता के लिए बहुत से प्रावधान भारतीय संविधान में सुनिश्चित किए है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के अनुसार अनुच्छेद (14-18) में समानता का अधिकार प्रदान किया गया है, जिसके अंतर्गत स्त्री एवं पुरुष के लैंगिक भेदभाव को समाप्त कर समानता सुनिश्चित की गई है। वर्तमान समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का वर्चस्व कायम है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था से अभिप्राय पुरुष प्रधान समाज से है जिसके अंतर्गत पुरुषों का वर्चस्व स्त्रियों पर स्थापित होता है। पितृसत्ता समाज में आज भी स्त्री शोषित व पीड़ित है। कानून व्यवस्था व अधिकारों के बावजूद भी स्त्री को अन्याय झेलना पड़ता है। पितृसत्ता की अत्यन्त स्पष्ट रूप से विवेचना करे तो, "पितृसत्ता शक्ति के उन रिश्तों को दर्शाती है जिनके माध्यम से पुरुषों का स्त्री पर वर्चस्व स्थापित होता है। पितृसत्ता एक ऐसी व्यवस्था को इंगित करता है जिसमें नारी को हर प्रकार से पुरुष के अधीन रखा जाता है और उसके व्यक्तित्व के विकास के अवरोधन को धार्मिक और नैतिक जामा पहना दिया जाता है। धर्म तथा नैतिकता के नाम पर ही उसको बचपन से ही ऐसे संस्कार दिये जाते है कि वह अपनी सुरक्षा व अपने लिए निर्णय लेने के लिए पुरुषों पर ताउम्र निर्भर रहे। इसी व्यवस्था की वजह से परिवार,

कार्यस्थल, समाज, राज्य यहां तक कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी नारी को विभिन्न प्रकार की हिंसाओं और भेदभावों को भुगतना पड़ता है। इस प्रकार की सीमाओं और वर्जनाओं के वातावरण में पली बढ़ी हुई स्त्री व्यवस्था द्वारा संरक्षित नारी शोषण तथा दमन के विरूद्ध आवाज उठाने का आत्मविश्वास नहीं जुटा पाती। यही पितृसत्ता की सबसे बड़ी ताकत है। यदि कोई स्त्री अपवाद स्वरूप विरोध करती भी है तो पितृसत्ता में उसे अच्छी औरत नहीं माना जाता।"[1]

समाज में नारी शोषण व अन्याय की जड़ ही पितृसत्ता है। इसके अंतर्गत स्त्री को समाज में समानता का अधिकार नहीं मिल पाता है। परिवार में बेटे तथा बेटी में असमानता व्यक्त कर सुविधाओं और जिम्मेदारियों में भी भेदभाव बरता जाता है। घर में कन्या जन्म से मायूसी छा जाती है। पितृसत्ता के तहत स्त्री के जन्म से ही उनके साथ हिंसा, शोषण, लिंग आधार पर भेदभाव, अधिकारों को छीनना, अन्याय करना सब स्त्री जीवन के पक्ष में निर्धारित होता है। उत्पल कुमार स्त्री-पुरुष की असमानता व शोषण के प्रति अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- "कोई भी 'पर्सनल लॉ' देख लीजिए, सभी में स्त्री-पुरुष की गैर-बराबरी को बनाये रखने वाले समान तत्त्व मिल जायेंगे। मसलन, सभी परिस्थितियों में पुरुष ही परिवार का मुखिया है; उत्तराधिकार के मामले में वंशक्रम स्त्रियों से नहीं, पुरुषों से चलता है; शादी के बाद पुरुष जहाँ रहने-बसने का निर्णय करता है, स्त्री को वहीं रहना पड़ता है; उदारतावश या आर्थिक लाभ के लिए स्त्री को बाहर काम करने की छूट भले ही दे दी जाये, लेकिन स्त्री को घर के बाहर जाकर काम करने का अधिकार नहीं है; बच्चों का प्रकृत अभिभावक पुरुष ही होता है; स्त्री के मुकाबले पुरुष अधिक आसानी से तलाक दे सकता है और किसी भी 'पर्सनल लॉ' के अंतर्गत स्त्री को संपत्ति में समान अधिकार नहीं मिलता।"[2]

रंजना जायसवाल की कहानी 'दूसरा थप्पड़' की पात्रा 'निशा' जो बेहद संस्कारशील एवं शालीन लड़की है। 'निशा' का विवाह बेहद मार्डन लड़के 'अनीश' के साथ होता है। 'अनीश' 'निशा' के सीधे स्वभाव को सहन न करते हुए उस पर अत्याचार करता है और उसे भी अपनी तरह मार्डन बनाना चाहता है। पितृसत्ता के दौरान पुरुष को ही सारे अधिकार प्राप्त है वह जब चाहे स्त्री पर अपने अधिकार स्थापित कर सकता है। 'निशा' के मना करने पर 'अनीश' आक्रोश में आकर कहता

है- "गंवार ! मैं जानता था, तू ऐसा ही करेगी। सारा मजा खराब कर दिया। अब तेरे साथ रहना मुश्किल है। मैं जल्द ही तुझे तलाक दे दूँगा।"[3] संविधान व कानून व्यवस्था में स्त्री को पुरुषों के बराबर दर्जा प्राप्त है परंतु कानून की नजर में भी स्त्री की स्थिति दयनीय व दोयम दर्जे की है। भारतीय दंड संहिता की धारा 125 के अनुसार तलाकशुदा स्त्री अपने पति से गुजारा भत्ता प्राप्त कर सकती है परंतु कानून द्वारा अन्याय होने पर भी नारी विवश है। 'तलाक' कहानी में 'सावित्री' को उसका पति तलाक दे देता है और उसका कोर्ट में केस चल रहा होता है 'सावित्री' को अपनी जिन्दगी जीने के लिए मात्र चार सौ रूपये अपने पति की आमदनी से प्राप्त होते है। 'सावित्री' की पड़ोसन 'सरिता' उसके बारे में पूछते है तो वह बेबस व शोषित होकर कहती है-"ठीक है, मैं औरत हूँ। यह भी ठीक है कि कानून की औरतों के प्रति सहानुभूति का रवैया अपनाना चाहिए, लेकिन मेरा मन कदापि यह मानने को तैयार नहीं कि कानून औरतों से सहानुभूति पूर्वक रवैया अख्तियार करके उनकी मदद करता है। बल्कि चार सौ रुपये महीने का मुआवजा दिलवाकर यह एहसास दिलाना चाहता है कि ऐ, बेबस औरत यह तेरी कीमत, तेरे रातों की कीमत, तेरे उन जज्बातों की कीमत। जो तूने कभी अपने पति, अपने शौहर के लिए पैदा किये थे। ये तेरे उस ख्याल, उन सपनों की कीमत है जो कभी तूने अपने पति के साथ रहकर अपना घर बसाने के बारे में देखे थे। आज औरत कहाँ है? आज तो कानून औरतों की कीमत लगा रहा है। सरिता मेरा मन कभी भी उनके द्वारा दिये हुये ये चार सौ रुपये लेने को तैयार नहीं होता लेकिन क्या करूं यदि पैसा न लूं तो मैं वकील की फीस कैसे दूं। मैं क्या करूं कुछ समझ में नहीं आता।"[4]

सामाजिक न्याय की अवधारणा में स्त्रियों के लिए विशेष अधिनियम व कानून बनाये गये है परंतु नारी को न्याय प्राप्त नहीं होता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जड़े समाज में इतनी गहरी है कि चारों तरफ से प्रभावशील है। "कानून के कारण महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक बदलाव न आने के अनेक कारण हैं। सर्वप्रथम पूरी कानून व्यवस्था पित्रसत्तात्मक समाज के पक्ष में खड़ी नजर आती है। दूसरे कानून की धाराएं धारदार नहीं है। तीसरे अधिकांश ग्रामीण महिलाओं को कानून की जानकारी नहीं है, जिस कारण वे इसका लाभ नहीं उठा पाती। साथ ही यह भी महत्त्वपूर्ण है कि जिन महिलाओं को जानकारी है भी उलझी हुई कानूनी प्रक्रिया और

भ्रष्टाचार के कारण वे इसके पचड़े में नहीं पड़ना चाहती।"[5] मुक्ता की कहानी 'आँच' में 'सुमन' पुरुषों के वर्चस्व के कारण 'पंडित जगन्नाथ' के अन्याय का शिकार होती है। 'सुमन' के मन में विद्रोह पनपता है वह पंडित से पूछती है- "ई शास्त्रों में औरत के शरीर का बहुत बुराई हड.... माया कहल गइल हड इहै। शास्त्र पुराण तू घर-घर बाँचत हउअ, फिर एक औरत से तोहार काम काहे नहीं चलत?" पंडित कहता है- "ढेर बक-बक मत कर। शहरी बयार लगने से बौरा रही है। खबरदार जो उस दर्जी से आग लगायी। मार-मार के भूसा भरवा देंगे साले की चमड़ी में.... और तुम्हें तो डूब मरने को चुल्लू भर पानी न मिलेगा राँड...."[6] पुरुष की सत्ता तो प्राचीन काल से ही स्त्रियों के प्रति रही है जिसमें पुरुष अपने सत्ता के बल पर कुछ भी कर सकता है वह स्वतंत्र है। दीपक शर्मा की कहानी ऊँट की पीठ' में भी पुरुष वर्चस्व की शक्ति को प्रदर्शित किया है। कहानी का पात्र अपनी बहन 'कुसुम' के घर जाता है वहां उसका जीजा उससे व उसकी बहन से दुर्व्यवहार करता है और 'कुसुम' को ले जाने के लिए कहता है-"इस चंडी को अभी ले जा," "मैं तुझे बताये दे रहा हूँ आज मैं इसे जरूर मार डालूँगा, अगला घंटा भी यह देख न पाएगी।"[7]

वर्तमान में स्त्री आत्मनिर्भर होकर पितृसत्ता के प्रभाव में जकड़ी हुई है। कदम-कदम पर पुरुष अपने बल व वर्चस्व के अनुसार स्त्री का फायदा उठाता है। समाज में पीड़ित नारी को अन्याय मिलना असम्भव सा प्रतीत होता है। पुरुष नारी पर अत्याचार कर अपनी बहादुरी समझता है। अपनी शक्ति व वर्चस्व का पालन-पोषण करता है। 'छमिया' कहानी में पात्र 'छमिया' जो 'बलिया' से प्रेम करती है और विवाह के साथ रहती है। 'छमिया' के घर-परिवार में कोई नहीं होता है। 'बलिया' और उसकी एक बेटी 'निदिया' होती है। 'छमिया' को 'बलिया' बहुत परेशान व प्रताड़ित करता है। शराब पीकर उस पर अत्याचार करता है। 'छमिया' विवश होकर अपना और अपनी बेटी 'निदिया' के लिए भीख माँगने लगती है। 'बलिया' उस पर अत्याचार करता हुआ कहता है-"सुसरी। वहाँ क्या करने गई थी? कौन बैठा था तेरा वहाँ? तेरा मरद, तेरा घरवाला.... किसके लिए भीख माँगती थी। अपने पेट के लिए.... मेरे लिए या इसे-इसे निदिया को भिखमंगी बनाना चाहती थी। कोठे पर बैठा दे न इसे.... तू भी बैठ जा.... बहुतेरा खाने को मिल जाएगा।

सज जावेगी तू और ये फ्राक.... गुलाबी रंग का किसने दिया.... कौन लाया.... आज तुझे मार कर ही छोड़ूँगा।"[8] समाज में पितृसत्ता के तहत स्त्री पर तरह-तरह के नियंत्रण लगाये जाते है तथा उनके ही चरित्र पर लांछन तथा हिंसा को बढ़ावा दिया जाता है। पितृसत्ता में नारी शोषण को बढ़ावा मिल कर दिन प्रतिदिन अन्याय का सामना करना पड़ रहा है। स्त्री को विरोध करने पर भी उसे अपमानित व पीड़ित किया जाता है।

मंजु वनिता की कहानी 'सागर और सीपियाँ में भी पुरुष स्त्री के प्रति घिनौना बरताव कर उसे अपनी सत्ता का एहसास दिलाता है। इस कहानी में 'स्मिता' जो मध्यम वर्ग परिवार की लड़की है। 'सागर' अमीर वर्ग से सम्बन्धित पर 'स्मिता' को सुन्दरता व शिक्षित के बल पर अपने जिद के कारण विवाह कर लेता है। विवाह के बाद 'स्मिता' दो बेटियों को जन्म देती है जो पुरुष सत्ता के शासन व उसके वर्चस्व के खिलाफ है। 'सागर' 'स्मिता' को अत्याचार कर अन्याय करता है। 'स्मिता' का विरोध करने पर वह तड़प उठता है। 'स्मिता' कहती है-"तुमने क्यों मेरी जिन्दगी बर्बाद की? क्यों की थी मुझसे शादी? क्यों किया था ऐसा घिनौना मजाक? मैंने कब तुम्हारे आगे हाथ जोड़े थे बोलो? मै जानती थी इसका कोई उत्तर उनके पास नहीं था लेकिन मौन रहना उनके पुरुषत्व के खिलाफ था। वह मेरी बातों का जवाब हाथों से देने लगे।"[9] 'सागर' 'स्मिता' पर गुस्से से अत्याचार करने लगता है। खाने की मेज पर बैठते ही वह रोटियाँ उठाकर फैंकने लगता है, और आक्रोश में आकर 'स्मिता' से कहता है-"ये रोटी है। इसे तो कुत्ता भी नहीं खायेगा।"

"चुप क्यों बैठी है?"

"आजकल मैं तेरे सारे रंग-ढंग देख रहा हूँ हरामखोर।"

"मैं न तुझसे डरता हूँ न तेरी बेटियों से, क्या कर लेगी बोल। क्या कर लेगी? कभी कुछ देखा भी है उस मास्टर के यहाँ।"

"हरामखोर। मुझे तमीज सिखाती है अभी ठीक करता हूँ।"[10]

समाज में आर्थिक स्थिति सुधारने के बाद भी नारी पुरुष के वर्चस्व से बच नहीं पाती है। तब भी उसे अन्याय का सामना ही करना पड़ता है। 'मम्मी, ये पापा है..... कहानी में 'दिलीप' अपने पति 'जसवंत' द्वारा पीड़ित है। 'दिलीप' कॉलेज में पढ़ाकर स्वयं आत्मनिर्भर होकर अपने बच्चों का पालन-पोषण करती है। परन्तु समाज

में पितृसत्ता के प्रभाव से उसका पति 'जसवंत' अपना शासन चलाता है। 'दिलीप' से उसकी कमाई हड़प कर शराब के नशे में चुर रहता है। पैसे खत्म हो जाने पर फिर वह अपनी पत्नी 'दिलीप' पर अत्याचार कर हिंसा करता है। जब उसकी पत्नी घर में आने से 'जसवंत' का विरोध करती है तो 'जसवंत' कहता है- 'तुम्हारा घर! फिर वही बात.... घर तो घरवाले से होता है। घरवाला ही औरत को घरवाली बना कर लाता है। आज से यह घर मेरा है और मेरी मरजी से ही चलेगा यह घर.... और तुम भी, और तुम्हारे सिखाए-पढ़ाए ये संपोले भी.... समझी।" वह आगे आक्रोश में आकर कहता है- "बेहया....गश्ती.... टीचर क्या बन गई, सबको एक ही छड़ी से हांकना शुरू कर दिया है। लगता है पुरानी मार याद नहीं रही तुम्हें।"[11]

जया जादवानी की कहानी 'परिदृश्य' में 'मिसेज गोयल' परिवार में रहकर अपने दायित्वों का पूरी तरह से निभाती है। परन्तु परिवार में पति द्वारा उसकी दशा दयनीय है। कहानी का पात्र 'मि॰ गोयल' अपनी पत्नी के सीधे सरल स्वभाव से घृणा करता है वह चाहता है कि उसकी पत्नी आज की मार्डन स्त्री के रूप में उसके सामने आये। पार्टी में उसकी पत्नी द्वारा मार्डन बन जाने पर 'मि॰ गोयल' सहन न करते हुए अपने पुरुषत्व को अपनी पत्नी पर झाड़ता हुआ गुस्से से कहता है- "तुम्हें शर्म नहीं आती ऐसी हरकतें करते हुए पार्टी में?"

'मि॰ गोयल' की पत्नी विरोध करते हुए कहती है-'शर्म क्यूँ? और पार्टीज होती किसलिए है? बेशर्मी के लिए ही तो और बाकी सब वहाँ क्या करते हैं।"

"सबसे अपनी तुलना मत करो।"

"मैं नहीं, तुम करते हो तुलना, अपनी सुविधा और समझ से? कभी तुम्हें मेरे गँवारूपन पर एतराज होता है, कभी मेरी बोल्डनेस पर।"

"हाँ बोल्डनेस का मतलब ये तो नहीं कि तुम्हें हर कोई छू सकता है?"

"छुआ किसने है मुझे अब तक? छू ही तो नहीं पाया कोई?"

बकवास मत करो। स्त्रियों के लिए कुछ सामाजिक मर्यादाएँ होती हैं।

"हाँ सिर्फ स्त्रियों के लिए।"

"तुम जानती हो, तुम्हारी इस हरकत से बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।"

"बहुत घमंड हो गया है तुझे अपनी फिलॉसफी पर। बातें तो ऐसी करती है. .. ज्यादा बकवास की तो हाथ-पैर तोड़कर घर बैठा दूँगा।"[12] भारतीय समाज में 'महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा' महिलाओं के खिलाफ हिंसा निवारण के लिए (2009-2015) राष्ट्रीय अभियान चलाया गया है। समाज के अंतर्गत पुरुष नारी को समानता का दर्जा न देकर उसके साथ शोषण करता है और अपनी इच्छा से स्त्री को अपमानित कर विभिन्न प्रकार के फैसले ले सकता है। एस॰ आर॰ हरनोट की कहानी 'मिट्टी के लोग में 'बालदू' अपनी बेटी और पत्नी से काम करवाना चाहता है। जब उसकी पत्नी 'रामेशरी' मना कर देती है तो उसे बुरी तरह अपमानित करता हुआ कहता है- "रांड, महाराणी बन के बैठी रहती है। न खुद कुछ करती है न अपनी इस लाडली को कुछ कमाणे देती। गांव के जमींदारों का इतना काम पड़ा है उसको करते अब तुम्हारे को शर्म आने लगी है। मेरे से नी होता अब कुछ कि तुम्हारे को बैठ के खिलाया करुं। रंडी निकल जा यहां से और इन अपने जायों को भी साथ ले जा....।"[13] मुक्ता की कहानी 'अनुत्तरित प्रश्न' में 'मि॰ गुप्ता' अपनी पत्नी 'दामिनी' पर अत्याचार व अन्याय करता है। 'मिस्टर गुप्ता' अपनी पत्नी 'दामिनी' का मानसिक संतुलन ठीक नहीं बताता है और अपने बेटे 'सौरभ' के साथ भी अन्याय करता है और दोनों को घर से जाने के लिए कह देता है। क्योंकि समाज में परिवार के अंतर्गत पुरुष ही सब फैसले लेने में सक्षम है। वह अपनी पत्नी और बेटे को आदेश देता हुआ कहता है- "तुम दोनों के लिए इस घर के दरवाजे सदा-सदा के लिए बंद हो चुके हैं। तुम जहां जाना चाहो जा सकते हो।"[14]

समाज में पुरुष की मानसिकता नारी को केवल अपने अधीन रखने की है। उसे कठपुतली की तरह अपने इशारों पर नचाने की है। संविधान के अनुसार कानून द्वारा दी गई स्त्री-पुरुष की समानता कोई मान्य नहीं है। वर्तमान में भी परिवार पुराने परंपराओं के अनुसार चलता है जिसमें पितृसत्ता हावी है एवं पुरुष का वर्चस्व ज्यों का त्यों ही विद्यमान है। पूरनचन्द्र जोशी समाज में पितृसत्ता के नियंत्रण को लेकर अपने विचारों की प्रस्तुति देते हुए कहते है। "हमारे समाज में पितृसत्ता के साथ-साथ श्रेणीबद्धता भी है और ये दोनों चीजें एक-दूसरे के सहारे चलती हैं। इनके कारण मानवाधिकारों का और संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिक अधिकारों का हनन

होता है। भारतीय संविधान स्त्री-पुरुष को समान रूप से इस देश का नागरिक मानता है, उसने स्त्रियों का पुरुषों के समान ही आम मताधिकार दिया है, स्त्रियों को समाज का कमजोर तबका मानकर उसके 'एपावरमेंट' (सबलीकरण) के प्रावधान भी संविधान में है; फिर भी और आजादी के छप्पन साल बाद भी परिवार और समाज में स्त्री पर पुरुष का नियंत्रण, दमन और उत्पीड़न कायम है, खुले रूप में नहीं तो छद्म रूप में।"[15]

समाज में परिवार का मुखिया पुरुष ही होता है। परिवार के प्रत्येक फैसले पुरुष द्वारा ही लिए जाते है। परिवार में बच्चों की भी पितृसत्तात्मक संस्कार दिये जाते हैं। लड़कों को सम्पूर्ण संगठित एवं लड़कियों को अबला के ढांचे में ढाला जाता है। पितृसत्ता में स्वयं पुरुष स्त्री के प्रति अन्याय करता है। परिवार को न्याय से वंचित रख अपने अधिकारों को चलाता है। मंजु वनिता की 'फर्क' कहानी के अंतर्गत स्वयं पुरुष अपनी बेटी के साथ न्याय नहीं कर पाता है। परिवार में उसके द्वारा लिये फैसले को ही अंतिम फैसला माना जाता है। कहानी में 'अपूर्वा' के साथ छेड़छाड़ का मामला बढ़ जाने पर वह अपनी माँ को सारी बातें बताती है। उसकी मम्मी 'अपूर्वा' के पिता से बात करती है तो 'अपूर्वा' का पिता अपनी बेटी के साथ न्याय न कर एवं कानून व्यवस्था के अंतर्गत भी न्याय प्रदान न करके अन्याय प्रदान करता है। उसे अपने प्रतिष्ठा व मान-सम्मान का अधिक ध्यान होने के कारण वह फैसला लेता हुआ अपनी पत्नी से कहता है-"क्या होगा रिपोर्ट से रोज पुलिस घर आये और पूछे क्या-क्या हुआ, कहाँ? कैसे हुआ? कल के अखबार में फ्रण्ट पेज न्यूज हो ए०सी०जे०एम० भारद्वाज की बेटी के उनका चेहरा तमतमा गया। मैं हतप्रभ-सी सोचने लगी चिराग तले अँधेरा, दुनियाँ को न्याय दिलाने वालों का अपने ही घर में अन्याय।" वह आगे कहता है-"कितनी बार कहा था लड़की बड़ी हो रही है उसके आने-जाने, पहनने-ओढ़ने का ध्यान रखा करो। उसे गाड़ी में ही भेजा करो लेकिन तुम.... तुम ही उसे बोल्ड बनाने के लिए अकेले भेजती थी... अब भुगतो कितनी बार समझाया लड़के और लड़की में फर्क होता है लेकिन तुम्हीं ने नहीं माना।"[16]

भारतीय संविधान की कानून व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों के लिए आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम 1986 के द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 49-ए में

स्त्री को शारीरिक व मानसिकता रूप से परेशान करने के अपराध को तीन वर्ष तक की कैद तथा अर्थदण्ड की व्यवस्था की गई है परंतु स्त्री पुरुषों के अन्याय को झेलते हुए उनके वर्चस्व को मजबूत बनाती है जिससे पितृसत्ता की व्यवस्था को अधिक बल मिलता है। समाज में स्त्री को ही पुरुषों के शोषण का शिकार बनाया जाता है। समाज में फिर स्त्री को ही पुरुषों के शोषण का शिकार बनाया जाता है। समाज में फिर स्त्री को ही घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। पुरुष हिंसात्मक कार्य करके भी स्वतंत्र व चरित्रवान है। परन्तु स्त्री के ऊपर ही परिवार व समाज की इज्जत टिकी हुई है लेकिन समाज व परिवार चलता है पितृसत्ता के अधीन। 'आखिर क्यों' कहानी में 'पूजा' के साथ यौन शोषण होता है परंतु उसके ससुराल वाले 'पूजा' को घर में रखने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं होते है। 'पूजा' के साथ अन्याय होने के बाद ससुराल वाले भी उसे अपमानित व अन्याय करते है। 'पूजा' अपने पिता के साथ ससुराल न्याय मांगने जाती है तो उसकी सास जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था से प्रभावित है कहती है-"इस मनहूस ने जबसे इस घर में पैर रखा है तबसे सारा सुख-चैन छीन लिया। अब हम इसे अपने घर नहीं रखेंगे।"[17] 'पूजा' के पिता उसकी सास को समझाते हुए कहते है- "कैसी बात करती है बहिन जी ! आप औरत होकर भी औरत-दर्द नहीं समझती। पूजा पर क्या-क्या गुजरी आप लोगों ने तो पलटकर भी नहीं देखा, कभी एक फोन तो किया होता कि वह जिन्दा है या मर गयी है।"

"मर जाती तो अच्छा था, किस्सा तो खत्म होता पर ऐसों को मौत भी नहीं आती।"

'पूजा' के पिता विवश होकर कहते है-"काश ! आपके भी बेटी होती"

"मेरी बेटी होती 'तो चुपचाप जहर दे देता इज्जत जिन्दगी से बड़ी होती है देवमोहन ! तुम्हारी बेटी है तो तुम्हीं अपने घर में रखो हमारे घर में अब इसके लिए कोई जगह नहीं है।"[18] 'पूजा' अपने यौन शोषण, हिंसा व उत्पीड़न को लेकर विवश है। उसे अपने प्रति ससुराल पक्ष की तरफ से न्याय न मिलने की उम्मीद नहीं है। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की अवधारणा में स्त्री न्याय मिलना इतना आसान नहीं है वह लिखित रूप बहुत बढ़-चढ़ कर निर्धारित किया गया है, दिन प्रतिदिन नये कानून बनाये जाते है। लेकिन हर जगह निराशा ही हाथ लगती

है। 'पूजा' का अपने ससुराल पक्ष की अपमानित बातें सुनकर सब्र का बांध टूट जाता है और कहती है-"इनसे दया की भीख मत माँगिए पिताजी ! इनके बेटी नहीं है ये हमारा दर्द क्या समझेंगे। इनकी आँखों ने सोने की चमक, सिक्कों की खनक देखी है कसक क्या होती है ये क्या जाने।"[19] 'पूजा' कानून व्यवस्था व स्त्रियों के लिए सामाजिक न्याय की धज्जियां उड़ाते हुए अपने विवशता को बयान करती हुई स्पष्ट कहती है- "मैं जानती हूँ यह ऐसा समाज है जिसमें औरत को सम्मान तो क्या न्याय भी नहीं मिलता। अरे! कौन नहीं जानता बलात्कार के समय गवाह नहीं होते फिर भी.... फिर भी गवाह चाहिए। न्याय चाहिए, तो सुबूत लाइये। पुलिस वाले हो या वकील हो सब फिर उसे ऐसी निगाह से देखते हैं, ऐसे-ऐसे सवाल पूछते हैं, जिन्हें सुनकर आँखें शर्म से झुक जाती हैं, होंठ सिल जाते हैं कोई उनसे पूछे क्या बलात्कार के बाद औरत औरत नहीं रह जाती बेहया हो जाती है।"[20] 'पूजा' पीड़ित व विवश होकर आगे कहती है- "पिता जी चलिए ! मै औरत हूँ मुझे कहीं भी न्याय नहीं मिलेगा, न घर में, न अदालत में.... कहीं नहीं ! पशु-पक्षी जगत् में तो मादा अकेली ही अपने बच्चों का पालन-पोषण करती है तो क्या मैं इन्सान होकर भी इसकी परवरिश नहीं कर पाऊँगी।"[21]

समाज में स्त्री को दबाने और नियंत्रित करने के लिए पुरुष विभिन्न प्रकार की हिंसा व शोषण का सहारा लेता है जिसमें यौन शोषण व बलात्कार के मामले गम्भीर रहते है। परन्तु 'फैसला' कहानी में तो स्वयं पिता द्वारा ही अपनी बेटी के साथ अमानवीय कार्य करता है। कहानी में 'सत्या' अपने भाई के विवाह में जाने की तैयारी कर रही है वह अपने तीन बच्चों में से 'किशना' और 'सगुनी' को अपने साथ ले जाती है और 14 वर्ष की 'नीरू' को अपने पति के पास छोड़ जाती है। 'सत्या' जब विवाह से आती है तो 'नीरू' के बदलते ढ़ग को देखकर हैरान हो जाती है और उससे पूछती है तो 'नीरू' अपनी माँ को बताती है- "मैं तो कहती थी-मैं भी तेरे संग जाऊंगी.... मैंने नहीं रहना था यहाँ, पर तूने सुनी नहीं...." रोते-रोते नीरू आगे बताती है- "तेरे जाने के बाद, बापू मुझसे....?"

"बापू तुम्हारे पीछे मुझसे गन्दा काम करते थे।"[22]

'सत्या' 'नीरू' की बातें सुनकर आश्चर्य में पड़ जाती है और पति 'बिसेसर' को कॉलर से पकड़ कर आंगन में घसीट देती है और मारने लगती है उसको

रो-रोकर बुरा हाल हो जाता है वह कहती है- "शर्म नहीं आई तुम्हें, अपनी ही बेटी के साथ ऐसा नीच काम करते हुए? मर क्यों न गए उसी वक्त?" वह आगे गुस्से से कहती है- "मर हरामी ले नोच ले मुझे, बीवी नहीं तो क्या बेटी का व्यापार करेगा... अरे मां-बाप अपनी औलाद के लिए कुरबान हो जाते हैं और तू-तू तो बाप के नाम पर ही कलंक है।"[23] इसी तरह का यौन शोषण व बलात्कार ज्ञानी देवी की कहानी 'कुम्भीपाक' में हुआ है जिसमें 'निशा' अपनी माँ की मृत्यु के बाद अपने पिता के शोषण का शिकार होती है। दस वर्षीय से अधिक 'निशा' को कुछ समझ में नहीं आता कि उसके साथ क्या हो रहा है वह अपने पिता को कहती है- "बापू! आजकल देखो, मेरा पेट कैसे बड़ा और सख्त हो गया है और उल्टियाँ भी बहुत आती है?"[24] 'निशा' के पिता उसे धमकाते हुए चुपके से कहते है-"खबरदार ! किसी के आगे जुबान भी खोली तो। मेरा नाम भी तेरी जुबान पर आया तो गर्दन काट दूँगा। वैसे भी गांव वाले सब यही जानते है कि तू... नौकर के साथ... मुँह काला करती है।"[25] बलात्कार या यौन शोषण चाहे किसी भी भावना के वशीभूत होकर पुरुष करता है परन्तु उसकी शारीरिक व मानसिक पीड़ा केवल स्त्री को ही सहनी पड़ती है। उत्पल कुमार पीड़ित नारी के प्रति अन्याय को लेकर अपने कथन की पुष्टि करते हुए कहते है- "स्त्रियां घर और बाहर सर्वत्र अनेक प्रकार की हिंसा की शिकार बनायी जाती है। इनमें सबसे बड़ी और व्यापक हिंसा घरेलू होती है, जिसमें सबसे बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह होता है कि मारने वाला रोने भी नहीं देता। घरों के अंदर पिटाई, शारीरिक और मानसिक यातनाएँ बलात्कार और हत्याएँ होती रहती है, लेकिन बाहर या तो किसी को पता ही नहीं चलता या चलता भी है तो पड़ोसियों और संबंधियों से लेकर पुलिस और पत्रकारों तक को ऐसे मामलों में ज्यादा दिलचस्पी नहीं होती और यह घरेलू हिंसा किसी खास वर्ग, जाति या संप्रदाय के पुरुषों की विशेषता नहीं, बल्कि सभी वर्गों, सभी जातियों और सभी संप्रदायों के शिक्षित-अशिक्षित, शहरी-देहाती पुरुषों द्वारा ही की जाती है।"[26]

समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों को अपने पति, पिता, भाई, पुत्र व अन्य किसी व्यक्ति से अन्याय का सामना करना पड़ता है। नारी अपने जीवन में न्याय न पाकर विवशतापूर्वक जीने को मजबुर है। अंजु दुआ जैमिनी की

कहानी 'अगर तू साथ होता' में नारी की विवशता एवं अन्याय का स्पष्ट किया है। कहानी में 'रानी' अपने शराबी पति 'जेठराम' की मृत्यु के बाद भी अन्याय को झेल रही है। पैंतालिस वर्ष की आयु में अपने छः बच्चों का गुजारा चलाने के लिए अपने पति की जगह चपड़ासी पद पर कार्यरत करने के लिए मजबुर है। 'रानी' की ऐसी दर्दनाक स्थिति में सात भाईयों की अकेली बहन न्याय के लिए पीड़ित है जिसमें उसके भाई भी उसके साथ न्याय नहीं करते है। दफ्तर में काम करने वाली स्त्रियाँ 'रानी' से उसके जीवन के बारे में पूछती तो 'रानी' 'जेठाराम' अपने पति के बारे में बताती हुई कहती है-

"हाँ, दारू तो वे बहुत पीते थे। नशा खत्म होता फिर उठ जाते। दारू की बोतल ले आते फिर पीते। पी-पीकर गाली बकते और मारपीट करते। बच्चों को टी०वी० तक नहीं देखने देते थे। जब नशे में बेहोश हो जाते तो बची तनख्वाह हम उनकी जेब से निकाल लेते थे। मेरी बड़ी लड़की जिसकी मृत्यु हो गई है, वह बड़ी होशियार थी। पढ़ने में तेज थी। बाप की नशेड़ी हालत देखती तो उसे डाँटती थी। उसे टैंशन हो जाती थी। उसे टी०बी० हो गया था। वह एक हफ्ता अस्पताल में रही थी। उसके बाद चल बसी।"[27] 'रानी' अपनी पीड़ित व्यवस्था को लेकर विवश है कि उसे अपने पति द्वारा और भाईयों द्वारा भी न्याय नहीं मिला है। वह आगे बताती है- "मेरी माँ मेरी मदद किया करती थी। मैं सात भाइयों की अकेली बहन हूँ। ये दारू पीते थे इसलिए मेरे भाई मेरे घर नहीं आते थे। पर अब तो ये नहीं रहे। उसके बाद भी वे ससुरे नहीं आए। पीछे एक दिन एक भाई आया कहने लगा कि बेटी बड़ी हो रही है ब्याह नहीं करना। मैं बोली, अब आया है? डेढ़ साल हो गया इनको मरे। अब कौन दारू पीता है इस घर में। कभी तुम भाईयों ने आकर पूछा कि हमारी विधवा बहन कैसे गुजर करती है? उसके बच्चे कैसे जी रहे हैं? जब छोटे की शादी हुई तो तुमने मेरी एक बेटी को फ्रॉक तक ना ले दी। अब आए हो। सच मैडम जी। बड़ा दुख लगता है। भाई भी ना करें तो बाकी किससे उम्मीद रखें।"[28]

परिवार में पुरुष स्वयं अपना व स्त्री की व्यवस्था को अपने ढंग से निर्धारित करता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी की भावनाओं का दमन होता है। स्त्री स्वयं मुक्त नहीं है उसे पुरुष की इच्छा के अनुरूप ही जीवन जीने का अधिकार है पुरुष

ने स्वयं ही ऐसे अधिकारों को जन्म दिया हुआ है जो स्त्रियों पर लादे जाते है। कानून-व्यवस्था व सामाजिक न्याय का अस्तित्व न के बराबर है। कविता की कहानी 'बिन्दी री बिन्दी' में धर्मगत भेदभाव का सामना करते हुए पितृसत्ता के अधीन होकर अन्याय झेलना पड़ता है। 'आयशा' को उसका पति 'राहुल' अपनी पुरुष मानसिकता के तहत समझाता हुआ कहता है। क्योंकि 'आयशा' मुस्लिम धर्म से है और 'राहुल' हिन्दू धर्म से। "तुम उनके जैसी नहीं हो आयशा। तुम्हें इस घर में खुद को प्रूव करना है, उनकी उम्मीद से ज्यादा उन जैसी बनकर। तुम सबकी इच्छा के विरूद्ध आयी थी इस घर में। वह भी वैसी ही गयी है? तुम एक-दूसरे मजहब से दूसरी तरह की जिन्दगी से निकलकर आयी हो, तुम्हें ही रँगना होगा उनके रंग में।"[29]

सुरेखा सिन्हा की कहानी 'दामिनी' में भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की दशा को लेकर अपने विचार व्यक्त किये है और वे कहती है- "औरत। ऐसा लगता है जैसे कठपुतली मात्र है। मर्द जब चाहे तब उसको सजा-धजाकर, जहां मन हो नचा ले और जब चाहे निर्वस्त्र कर ले। औरत के मान-अपमान, लाज-शर्म आदि किसी भी बात का ख्याल केवल मर्द की खुशी और नाराजगी पर निर्भर करता है। मर्द खुश है तो औरत सिर आँखों पर और यदि नाराज हो गया तो पैरों तले कुचल दे।"[30] पितृसत्ता के दौरान नारी का शोषण व दमन जारी है। लैंगिकता के आधार पर स्त्री अपने पति के अधीन होती है परन्तु पितृसत्ता में पुरुष मुक्त है उस पर कोई वर्जनाएं नहीं है। अगर स्त्री ऐसा करें तो उसे मर्यादाओं से जोड़ दिया जाता है या कलंकित किया जाता है। मंजु वनिता की कहानी 'आखिर क्यों' में पूजा के साथ जबरदस्ती यौन शोषण होता है किन्तु 'पूजा' के ससुराल वाले उसे ही दोषी मानते है उसे ही अपमानित किया जाता है जबकि दोष पुरुष का होता है। 'पूजा' अपने ससुराल वालों से विरोध करती हुई न्याय की मांग करती है और कहती है-"बाबू जी। एक बेटी का पिता होना क्या कोई अपराध है? जो आप इन्हें इसकी सजा दिये जा रहे हैं। ये कहाँ का इन्साफ है? चरित्रहीन बस औरत ही कहलाती है। चरित्र, शील, इज्जत-आबरू का ठेका जैसे उसी ने ले रखा है, पता नहीं क्यों? जिन कामों को जानबूझकर करने पर भी पुरुष कलंकित नहीं होता, अपवित्र नहीं होता उन्हीं कामों को यदि कोई औरत बेबस होकर करती है तो वह

पतिता कहलाती है। मेरे साथ जो कुछ हुआ वो सब क्या मेरी मर्जी से हुआ? मेरा क्या कुसूर था? यही था कि मैं एक कमजोर बेबस औरत थी। अरे अम्मा आप ही तो बता रही थी कि जब ये तीन साल के थे, एक बार दीपावली पर बाबूजी इन्हें अनार चलाकर दिखा रहे तो वह अचानक फट गया था बाबूजी का सारा मुँह झुलस गया था एक आँख भी चली गयी थी। उस हादसे को आपने कैसे भुला दिया? क्यों उसे दुर्घटना मान लिया था इसलिए कि उस दुर्घटना में बाबू जी की कोई गलती नहीं थी फिर मेरे साथ ही ऐसा क्यों?"[31]

'मम्मी, ये पापा है' कहानी में 'सुधा' मुख्य पात्रा 'दिलीप' से पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी की स्थिति का पर्दाफाश करते हुए विचार-विमर्श करती है कि पितृसत्ता के शासन में स्त्री एक वस्तु बनकर रह गई है। पुरुष भी स्त्री को केवल वस्तु रूप से ज्यादा महत्त्व न देकर अपना वर्चस्व कायम रखना चाहता है। 'सुधा' 'दिलीप' से कहती है-"दी, जीवन के हर क्षेत्र में अपनी योग्यता प्रमाणित कर देने के बाद भी स्त्री को व्यक्ति के रूप में मान्यता नहीं मिल पा रही? पुरुष की नजर में वह वस्तु ही बनी हुई है। गजेटेड अफसर हो या कि जज या मिनिस्टर घर की चारदीवारी में दाखिल होते ही हर औरत घरेलू कामगार और सेक्स वर्कर भर होकर रह जाती है। पुरुष की इच्छाओं और वासनाओं की गुलाम। घर और बिस्तर की सुविधाओं में जरा सी कोताही होने पर उसे भी आम स्त्रियों की तरह घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है।"[32]

समाज में शिक्षित नारी भी स्वयं के साथ न्याय नहीं कर पाती है। मंजु वनिता की कहानी 'फर्क' में कहानी की पात्रा स्वयं व अपनी बेटी 'अपूर्वा' के साथ पितृसत्ता के अधीन होकर बुरी तरह से ग्रस्त है। पितृसत्ता का प्रभाव इतना गहराया हुआ है कि स्त्री दब्बू प्रवृत्ति की बन गई है चाह कर भी वह विरोध नहीं कर सकती। सिर्फ मन ही मन सोचती हुई कहती है कि उसके घर में काम करने वाली 'ओमवती' अन्याय का विरोध करना जानती है और एक वह स्वयं है जो चाहकर भी ऐसा नहीं कर सकती है वह कहती है-"कितना फर्क है मुझमें और इसमें। झूठी प्रतिष्ठा, खोखला बड़प्पन कितनी कमजोर हूँ मैं ! इज्जत.... बेइज्जती, समाज का डर हमारे ही पैरों में बेड़ियाँ क्यों डाले है? मेकअप की पर्तों में उदासी छिपाये, लिपस्टिक की तरह होठों पर मुस्कान चिपकाये क्यों एक सच को छिपाने के लिए

सौ झूठ बोलते हैं हमे.... शिक्षा और सभ्यता ने क्या सही सिखाया है कितने कायर, कितने झूठे, कितने बनावटी है हम, चाहकर भी क्यों नहीं तोड़ पाते हैं इन शृंखलाओं को। मन की दीवारों से टकराकर हमेशा लौट जाते हैं ये अनुत्तरित प्रश्न, केवल अनुगूँज में ही सुनाई देते हैं ये शब्द। ऐसी घटनाएँ अशिक्षित समाज में या ग्रामीण क्षेत्रों में ही नहीं होती सभ्यों के बीच भी तो यही सब होता है पर हम लोग दबा जाते हैं.... कोई फर्क नहीं.... फिर क्यों? आखिर क्यों?"[33]

'अजन्मा गंगाजल' कहानी में कहानी की पात्रा से लिंग के आधार पर भेदभाव होता है जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था को मजबूत बनाता है। परिवार में लड़की को हीनता का अहसास दिलाया जाता है स्त्री केवल परिवार में मर्यादाओं का बोझ ढोने के लिए ही है। उन्हें कभी मुक्त नहीं किया जाएगा वह कहती है-"भैया अक्सर अपने दोस्तों के साथ सिनेमा भी जाता था और मुझे कहीं भी अकेले जाने की इजाज़त नहीं थी। मुझे हर काम में, हर बात में रोका-टोका जाता था। दिन में दस बार अपनी इज्जत, मान-मर्यादा का स्मरण कराया जाता था जैसे सारा इज्जत-आबरू का सारा ठेका महिलाओं ने ही ले रखा है।"[34] मंजु वनिता की अन्य कहानी 'भीगे पंखों की उड़ान' में 'सपना' अपने पति द्वारा पीड़ित है। कोर्ट केस चलने के दौरान उसके पति ने 'सपना' से अपना बेटा 'अक्षर' लेकर बेटी 'श्रेया' को उसे सौंप दिया। पुरुष को सभी अधिकार है कि स्त्री को कब, कहां, कैसे इस्तेमाल करना है। पुरुष स्वयं अपनी इच्छा के अनुसार स्त्री को चलाना चाहता है स्त्री की खुशी व इच्छा कोई मायने नहीं रखती है। कहानी पात्रा अपनी सहेली 'सपना' से उसकी स्थिति के बारे में जानना चाहती है तो 'सपना' उसे बताती है-"कितनी बार कहा था मैंने लेकिन हर बार वही झगड़ा, वही क्लेश। मेरे तो हर काम में उनकी मर्जी चलती और खुद वो पूरी तरह आजाद। जब वो दिल्ली में होते तो अक्सर रात को देर से लौटते। कभी मीटिंग, कभी महफिल, मेरे लिए वही चारदीवारी, वही कैदखाना। अक्सर मैं नाराज होकर रात को बिना खाना खाये सो जाती। पर इसका भी उन पर कोई असर नहीं होता मुझे लगता शायद कभी तो उन्हें भी महसूस होगा, कभी 'आई एम सॉरी' कहकर इसका इजहार करेंगे पर ऐसा कभी नहीं हुआ।"[35] 'सपना' बीमार रहने लगती है तो वह 'डॉ॰ हर्ष' के पास चैकअप करवाने चली जाती है। 'डॉ॰ हर्ष' से 'सपना' की नजदीकियाँ बढ़ जाती है, पति द्वारा

प्रताड़ित 'सपना' 'डॉ॰ हर्ष' से मन ही मन प्यार करने लगती है। तब 'क्षिप्रा' उसे समझाती हुई कहती है कि समाज में पितृसत्ता में पुरुष के वर्चस्व के कारण ये सभी अधिकार उन्हें ही प्राप्त है। 'क्षिप्रा' आगे कहती है-"मैं तुम्हारी मनः स्थिति को समझ सकती हूँ तन के साथ मन की तृप्ति भी जरूरी है लेकिन तुम शादी-शुदा हो सपना। तुमने यह नहीं सोचा हमारे समाज में यह अधिकार केवल पुरुषों को है, महिलाओं के लिए सब पूर्ण वर्जित है। पुरुषों का नजरिया आज इक्कीसवीं शताब्दी में भी वही है वह आज भी अपनी पत्नी से किसी पुरुष के शारीरिक तो क्या भावनात्मक सम्बन्धों को भी सहन नहीं कर पाता है। पत्नी पति का बड़े से बड़ा गुनाह भी माफ कर सकती है लेकिन कोई भी पति पत्नी की जरा-सी बेवफाई बर्दाश्त नहीं कर पाता।"[36]

समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री का दमन, शोषण व उत्पीड़न ही होता आया है। घर के अन्दर व बाहर उस पर अत्याचार व नियंत्रण ही लगे है। समाज में पुरुष को किसी भी घृणित कार्य करने पर कोई उसके चरित्र पर लांछन नहीं लगा सकता है। पितृसत्ता में पुरुष पत्नी की मृत्यु के बाद तुरंत विवाह करने के लिए प्रेरित है। परंतु समाज में अगर स्त्री ऐसा करे तो प्रथम यह कि उसके चरित्र पर लांछन लगाया जाता है जिससे वह दूसरा विवाह और स्वतंत्र जीवन नहीं जी सकती है। समाज में उसे सब बुरी नजरों से देखते है परंतु पुरुष प्रधान समाज में पुरुष को प्रत्येक कार्य करने का अधिकार है परंतु स्त्रियों के लिए कुछ नहीं, जिससे उनके साथ समाज, कानून सब अन्याय करते हैं। 'लौट आई बहार' कहानी की 'रमा' पढ़ी-लिखी आधुनिक विचारों वाली स्त्री हैं। परंतु वह अपने पति के व्यवहार से परेशान है। उसका पति उसे अहमियत प्रदान नहीं करता है। अपनी मर्जी से अपनी जिन्दगी जीता है। 'रमा' अपनी सहेली 'राखी' को पितृसत्ता के दौरान स्त्री दशा को व्यक्त करती हुई उससे कहती है-"एक-से-एक नाजायज रिश्ते इस समाज में पलते हैं और मर्द पर उंगली तक नहीं उठती। किसी से कुछ कहूँ तो लोग मुझे ही कहेंगे कि जरूर मुझमें ही कोई कमी होगी जो मैं अपने पति को बांधकर नहीं रख सकी। गृहस्थी पर कोई आँच आए तो दोष पत्नी पर ही थोपा जाता है।"[37]

समाज में प्रत्येक पक्ष के अंतर्गत पुरुष सर्वोपरि है चाहे फिर विवाह के मामले हो या तलाक के मामले में। परन्तु पुरुष प्रधान समाज में नारी पति द्वारा

प्रताड़ित, मृत्यु हो जाने या तलाक हो जाने पर भी शान्ति से अपना जीवन बलिदान कर देती है। वह कानून व्यवस्था, अधिकारों व पुलिस व्यवस्था के अन्याय से परिचित है कि समाज में स्त्री को न्याय मिलना या प्रदान करना आसानी से सम्भव नहीं है। मंजु वनिता की कहानी 'सागर और सीपियाँ' में 'स्मिता' अपनी पति 'सागर' द्वारा शोषित है। 'सागर' अपनी पत्नी 'स्मिता' व दोनों बेटियों 'दिशा-निशा' को घर से बाहर निकाल देता है। क्योंकि 'स्मिता' ससुराल में पुत्र को जन्म न देकर दो बेटियों को जन्म दिया क्योंकि वंश परंपरा तो पुत्रों से ही चलती है। 'सागर' 'स्मिता' से खुश न होकर उसे त्याग देता है। 'स्मिता' के परिवार वाले उसे दूसरी शादी करने के लिए मजबूर करते है परंतु 'स्मिता' अपनी मम्मी को साफ-साफ कह देती है-"दूसरी शादी का तो कोई प्रश्न ही नहीं है और रहा केस तो कानून पर मुझे बिल्कुल भरोसा नहीं है। पैसा और पहुँच के कारण पुलिस और कानून गूँगे-बहरे हो जाते हैं। कोशिश करने पर मुकदमे बाजी से कुछ मिलेगा भी तो दसियों साल बाद। तब तक क्या करूँगी?"[38] 'स्मिता' भ्रष्ट कानून व पुलिस से अच्छी तरह परिचित है। देर से न्याय मिलना अन्याय के बराबर ही है।

संविधान में कानून व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों के लिए न जाने कितने अधिनियम प्रावधान निहित है। परन्तु पुरुष स्त्री के मामले में स्वछंद है वह जब चाहे पहली को तलाक देकर दूसरा विवाह बड़ी आसानी से कर लेता है। अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'अगरचे' में 'रेवा' पुरुषों की नियति पर विचार करती है कि पुरुषों को दूसरा विवाह करने पर समाज में अपमान झेलना नहीं पड़ता। अपनी बेटी की उम्र की कुंवारी लड़कियों से विवाह रचाते है। 'रेवा' अपने विचारों को स्पष्ट करती हुई कहती है- "पहली में जरा-सी कमी हुई या वो मरी कि फट दूसरी ले आएंगे। वो पिछली गली में रहने वाला आकाश, उसकी बीवी को मरे छः महीने भी नहीं हुए थे कि दूसरी ब्याह लाया। चलो वो तो जवान था। कोई बाल-बच्चा नहीं था। पर मिस्टर ढींगरा? उस बुड्ढे पर कौन-सी जवानी चढ़ी थी? बीवी मरी कि तीन महीने के भीतर दूसरी ले आया। घर में बहू लाने की उम्र में बीवी ले आया।"[39] उमा चक्रवर्ती पितृसत्ता के तहत पुरुषों की आलोचना कर अपने विचारों को प्रकट करती है- "पुरुष तो पत्नी के मर जाने पर तुरंत दूसरे विवाह की सोचने लगता है और तेरह दिन के बाद ही दूसरा विवाह रचा सकता है, जबकि स्त्री

विधवा हो जाने पर सारी जिन्दगी पति के नाम को रोती रहेगी और तमाम तरह के कष्टों से भरा हुआ अपमानजनक जीवन जीती रहेगी। इस प्रकार नैतिकता के ये दोहरे मानदंड पितृसत्ता की मुख्य पहचान और उसकी आलोचना के रूप में सामने आते है।"[40] वर्तमान समाज में स्त्री मुक्त रहने के लिए विवाह के बंधन में बंधना नहीं चाहती है। वह लिविंग रिलेशनशिप में विश्वास रखती है परंतु पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रकोप इस मुक्त बंधन में भी स्त्री को लांछन व अपमानित करता है। कविता की कहानी 'आशियाना' की 'सीमा' अपने दोस्त 'मुकुल' के साथ रहती है वे दोनों एक साथ बिना विवाह किये एक किराये के मकान पर रहते है। 'मुकुल' का चाचा 'सीमा' पर लांछन लगाता हुआ 'मुकुल' से कहता है-"एक तो परिवार की इज्जत दाँव पर लगाकर इस लड़की के साथ रहते हो, दूसरे कहते फिरते हो कि पति-पत्नी है। ऐसी चालू लड़कियाँ पत्नी शब्द की गरिमा को समझ भी सकती हैं क्या? हमारे घर की बेटियाँ ऐसे कहीं रहतीं तो काटकर फेंक देते... मैंने मकान मालिक को सब बता दिया है... कोई पत्नी वत्नी नहीं है... ऐसे ही राह चलती कोई है।"[41]

पितृसत्ता में स्त्री की स्थिति चाहे वह किसी रूप में हो पुरुष सदैव दमन व उत्पीड़न ही करता है। बस फर्क नहीं आने देता तो अपने वर्चस्व में। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री भी जिससे पूरी तरह प्रभावित होकर अपनी बेटियों और बहुओं पर सत्ता कायम रखने में पुरुष का साथ देती है। अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'घरौंदे की तलाश' में सास द्वारा अपनी बहु 'सुरुचि' को प्रताड़ित करती हुई तानें मारती है कि सुरूचि सुन्दर नहीं है, स्वादिष्ट भोजन नहीं बनाती है। हर प्रकार से नारी में ही सभी बुराईयाँ देखी जाती है। उसका ही कसूर है, पति स्वयं में स्वतंत्र है, पुरुष का कोई दोष नहीं है क्योंकि वह पुरुष है क्या इतना काफी नहीं है? उसकी सास कहती है- "तू सुन्दर होती तो पति को बाँध कर रखती। तू शक्की है। बन-सँवर कर नहीं रहती। तभी मेरा बेटा तुझमें नहीं बँधता"[42] और दूसरी तरफ स्त्री घर परिवार में तालमेल मिलाकर कार्य करती है तब भी वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्याय से बच नहीं पाती है। ममता कालिया की कहानी 'बोलने वाली औरत' में दीपशिखा' की सास उसे बहुत परेशान करती है। घर में 'दीपशिखा' का पति कभी छुट्टी वाले दिन घर के कामों में हाथ बंटवाता तो उसकी बीजी उसे टोक देती है

और कहती है-"ये औरतों वाले काम करता तू अच्छा लगता है। तू तो बिल्कुल जोरू का गुलाम हो गया है।"[43] अगर 'दीपशिखा' और उसका पति 'कपिल' बच्चों के साथ कहीं बाहर घूमने की योजना बनाते तो बच्चे अपनी बीजी (दादी) को बता देते तो उनकी दादी भड़क उठती है और कहती है-"अपना काम-धन्धा छोड़ अब काका जयपुर जाएगा, क्यों बीवी को सैर कराने। एक हम थे, कभी घर से बाहर पैर नहीं रखा।" 'शिखा' के विरोध करने पर उसकी सास को ओर गुस्सा आ जाता है- "तीरथ को तू घूमना कहती है। इतनी खराब जुबान पायी है तूने, कैसे गुजारा होगा तेरी गृहस्थी का।"[44]

समाज में स्त्री को किसी भी परिस्थिति में जीने नहीं दिया जाता है। परिवार में नारी को अपना पिता, भाई भाभियों द्वारा पितृसत्ता के तरह पति के वर्चस्व व स्वयं के वर्चस्व का ध्यान करवाते है। 'औरत होने का गुनाह' कहानी में 'सुनीता' को उसकी भाभियां पितृसत्ता के प्रभाव में आकर उसके साथ अन्याय करती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत 'सुनीता' को प्रताड़ित करते हुए उसकी भाभियां कहती है-"हुंह ! चली आई मुँह उठाए... कहती है, छोड़ आई हूँ उस घर को हमेशा के लिए। कहीं ऐसा भी होता है? ब्याही लड़की अपने पति के घर ही अच्छी लगती है, माँ-बाप के घर नहीं।"[45] 'सुनिता' की स्थिति अपने ससुराल में नरक जैसी है। मायके वाले 'सुनिता' को न्याय तो क्या दिलवाने से गए खुद भी उसके साथ अन्याय करते है। पितृसत्ता को उस पर थोपते हैं कि तेरा पति ही सब कुछ है। वहीं तेरा फैसला करेगा कि उसे जिन्दगी कैसे बितानी है? 'सुनिता' के घरवाले उसे ससुराल लौट जाने की सीख दे रहे है और आगे कहते है-"आदमी लाख बुरा हो पर, अपना आदमी अपना होता है। उस घर से कदम बाहर निकालकर तुमने बहुत बड़ी भूल की है। अभी तो कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम्हें लौट जाना चाहिए।"[46] 'सुनीता' के पिता और भाई उसके दुख की परवाह नहीं करते है बल्कि उसे निर्देश देकर अपना पल्ला झाड़ते है। 'सुनीता' का पिता भी स्वयं अपनी बेटी से अन्याय करता हुआ आदेशात्मक स्वर से 'सुनीता' को कहता है-"मैंने प्रकाश से बात कर ली है। कुछेक दिन में वह आ रहा है तुम्हें लेने। चुपचाप उसके संग चली जाना। बखेड़ा खड़ा करने की जरूरत नहीं, समझी।"[47] 'सुनीता' को अपने घर से भी न्याय नहीं मिलता है। ससुराल में घर के सदस्यों को 'सुनीता' से कोई

लगाव नहीं होता है सास, ननदें स्वयं औरत होकर भी 'सुनीता' के साथ अत्याचार व अन्याय करती है और कहती है-"अब भई, तेरा खसम है। कमाता है, घर चलाता है, पूरे घर कर स्वामी है, जैसा कहेगा, करना तो पड़ेगा। जिस हाल में रखेगा, रहना पड़ेगा। औरत की खुशी आदमी की खुशी में ही होती है।"[48]

समाज में स्त्री असमानता को सदैव प्रदर्शित किया जाता है कि वह पुरुषों की अपेक्षा हीन है। स्त्री की असमानता व अन्याय के दौरान उसे ही जिन्दगी में रोना है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी को ही अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अवधेश प्रीत की कहानी 'तीसरी औरत' में स्त्री व पुरुष की असमानता व पितृसत्ता का प्रभाव स्त्री-पुरुष दोनों पर ही रहा है। कहानी में कहानी की तीसरी औरत जिसके पति की मृत्यु हो जाती है तो सभी उसे शोक मनाने के लिए कहते है। "रो, बेटी रो। रोना ही नियति है तेरी।"[49] कहानी में तीसरी औरत समझ नहीं पाती कि औरत को रोना ही उसकी नियति क्यों माना जाता है क्या केवल औरत रोने के लिए अभिशप्त है। वह अपनी अम्मा को अपने दुख के बारे में स्त्री दशा को व्यक्त करते हुए कहती है-"अम्मा, मरे चाहे कोई। मारे चाहे कोई। कभी किसी ने सोचा कि उनके किए की सजा अन्ततः औरत को ही भुगतनी पड़ती है?"[50]

पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष ही नारी के लिए फैसला करते है कि उसे नौकरी करनी है या नहीं, अगर नौकरी करनी है तो वो भी घर के पुरुष या पति ही तय करते है। स्त्री की श्रम शक्ति पर नियंत्रण रखकर पुरुष पितृसत्ता को लाभ पहुँचाते है जिसके अनुसार स्त्री को दमन और उत्पीड़न को सहन करना पड़ता है। 'अजन्मा गंगाजल' कहानी में स्त्री को अपने पति द्वारा बार-बार अपमानित होना पड़ता है। कहानी में पति द्वारा अपनी पत्नी की महत्त्वकांक्षां व स्वाभिमान को तुच्छ समझा जाता है। पितृसत्ता के वर्चस्व में अपनी पत्नी पर अन्याय करता हुआ करता है-"ओहो कमाकर लाती है,.... अच्छा तेरी कमाई खा रहे हैं. इसलिए हम पर रौब दिखाती है। जूती कीमती होगी तो क्या सिर पर पहन लेंगे?"[51] चन्द्रकान्ता की कहानी 'इस दौड़ में कहानी' में 'शिवि' अपने जीवन में डॉक्टर बनने के सपने को पूरा नहीं कर पाती है। 'शिवि' का विवाह 'नितिन' से हो जाता है। विवाह हो जाने के बाद उसका पति 'शिवि' को कॉलेज की नौकरी छोड़ने के लिए कहता है। ताकि वह घर पर रह कर बच्ची की देखभाल कर सके। 'नितिन' अपने पुरुष

वर्चस्व को अपनी पत्नी पर लागू करता हुआ कहता है- "नौकरी छोड़ दो, बच्ची की देखभाल करो।" "माँ ने ताउम्र हमारी सेवा की हैं, उन्हें अब आराम चाहिए, फिर ऐसी कौन-सी नौकरी है तुम्हारी कि छोड़ने से कुछ फर्क पड़ेगा? मेरा इतना बड़ा बिजिनेस है।"[52]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुष नारी पर अपना अधिकार जमाता है। 'नितिन' अपनी पत्नी 'शिवि' को बच्ची की देखभाल सही तरीके से न करने पर अपना रौब झाड़ता हुआ गुस्से से कहता है- "सीरियल दिया? अब कुछ सॉलिड दिया करो, डॉक्टर को दिखा आओ, दाँत निकल रहे है, यह माथे पर चोट कैसे लगी? भई तुम दिनभर घर में बैठी-बैठी क्या करती रहती हो कि एक नन्ही बच्ची तुम से संभलती नहीं?[53] 'नितिन', शिवि' की खुशियों का ध्यान न रखकर अपने कार्य में तरक्की न मिलने से उस पर गुस्से से भड़क जाता है और गुस्से से कहता है- "सेजल क्यों रो रही है?"

"घर आता हूँ तो महाभारत चलता रहता है। थका-मांदा होता हूँ, पर यहां भी सुकून नहीं।"

"तुम्हें किस चीज की कमी है, जो शिकायत करोगी? घर में नौकर है बाई है। तुम्हें तो बस, जरा-सी बच्ची को देखना है, वह भी तुमसे होता नहीं।"[54] 'नितिन' आगे आक्रोश में आ कर 'शिवि' को डांटता हुआ कहता है -"मेरी परेशानियों की जड़ तो तुम्हीं हो। बिजिनेस के बारे में तुम क्या जाना, जिसकी सात पीढ़ियों ने दफ्तरों में कलम घिसाई की और सरकारी नौकरियों में खपते रहे। पता नहीं, खुद को क्या समझती हो, मुझे सीख दे रही हो,? अपने गिरबान में तो झाँकती नहीं। जाओ, दूसरे कमरे में चली जाओ। तुम्हें देखकर मेरा ब्लडप्रेशर बढ़ जाता है ...."[55]

समाज में स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है आज भी स्त्री को पैर की जूती ही समझा जाता है। भले ही वर्तमान में स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो गई है परन्तु समाज व परिवार में नारी को शारीरिक, मानसिक व भौतिक रूप से कमजोर माना जाता है। "आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर आज की महिलाएं काफी आगे निकल चुकी हैं, आर्थिक सम्पन्नता ने उन्हें सबलता प्रदान की है। लेकिन इस 'अर्थ' से उनकी समस्याओं का अंत नहीं हुआ है। वस्तुतः आज भी उनका मानसिक, शारीरिक

व यौन उत्पीड़न होता है। इस त्रासदी का कारण हमारी पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था में ढूंढा जा सकता है। आज आर्थिक रूप से महिलाओं की स्थिति तो बदल गयी लेकिन पुरुषों की सदियों पुरानी मानसिकता नहीं बदली, सोच नहीं बदली। उंगलियों पर गिने जाने वाले कुछ मामलों को छोड़ दे तो आज भी एक सामान्य भारतीय परिवार में महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की है।"[56]

वर्तमान समाज की स्थिति में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत पुरुष ही अपना वर्चस्व कायम रखने की बात करता है। स्त्री का पैदा होने और स्त्री के मरने तक पुरुष की पितृसत्ता के कारण ही सम्भव है क्योंकि स्त्री के विवाह के दौरान दहेज समस्या समाज की बड़ी व गम्भीर समस्याओं में से एक है। जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण ही पनपी है जिसमें कन्याओं का कोई वजूद नहीं है। कानून व्यवस्था के दौरान स्त्री के लिए दहेज उत्पीड़न कानून बनाये गये है। (1961) दहेज प्रतिबंध अधिनियम के अंतर्गत न जाने कितनी धाराओं के माध्यम से न्याय प्रदान करने का प्रावधान प्रचलित है जिसमें दहेज देने या लेने के अपराध में कारावास व जुर्माना निहित है। भारतीय दंड संहिता में दो और नई धाराएं जोड़कर (304 ख तथा 408क) में दहेज सम्बन्धी प्रावधान कड़े किये है परन्तु स्त्रियों के संरक्षण के लिए बनाये गए कानून न्याय प्रदान करने में कितने सक्षम है? रेणु त्रिपाठी समाज में दहेज की स्थिति व परिदृश्य को स्पष्ट करती हुई कहती है- "विवाह एक बंधन है दो व्यक्तियों के बीच, दो दिलों के बीच, लेकिन वस्तुस्थिति इसके ठीक विपरीत है। वस्तुतः विवाह नामक संस्था टिकी होती है दहेज की मात्रा पर। पश्चिमी देशों की अपेक्षा हमारे देश में दहेज की समस्या कुछ अधिक विकराल है। आज के सभ्य और तथाकथित सुसंस्कृत समाज में भी दहेज के लिए स्त्री को सताया जाता है, उसे प्रताड़ित किया जाता है। जाने कितनी बहुएं प्रतिवर्ष दहेज के कारण जिंदा जला दी जाती है, हजारों महिलाओं को दहेज के कारण घर से निकाल दिया जाता है।"[57]

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'कठपुतलियाँ' में 'सुगना' दहेज के कारण उसके साथ अन्याय होता है। दहेज की मांग बढ़ जाने से दसवीं फेल 'जोगिन्द्र' से 'सुगना' का रिश्ता तोड़ दिया जाता है। दहेज के कारण न जाने कितनी स्त्रियों की खुशियां व जीवन बर्बाद हो चुके है और हो रही है। दहेज की समस्या के कारण

'सुगना' को मनचाहा वर न मिलकर अपनी उम्र से ज्यादा पुरुष से विवाह कर बलिदान देना पड़ता है। 'सुगना' की सहेलियाँ उससे विवाह के बारे में पूछने आती है तो 'सुगना' बताती है- "बापू तो कहीं और बात तय कर गये थे, वो जोगेन्दर था... दसवी फेल था। जीन्स की पैंट और लाल कमीज पहनता और धूप का चश्मा लगाता। सब जोगी कहते। पर उनके आँखें मूँदते ही लेन-देन की बात पर बाई ने तीन साल पुराना रिश्ता तोड़ दिया। रिश्ता टूट गया तो जेहन में गूँजता नाम भी पीछे छूट गया। तेरह साल की सुगनाबाई का ब्याह तीस बरस के अपाहिज और विधुर कठपुतली वाले रामकिशन से हो गया।"[58]

समाज में स्त्री न्याय प्राप्त करने के लिए पितृसत्ता में अपना अस्तित्व खोजती है। स्त्रियाँ घर और बाहर अलग-अलग भूमिकाओं में हिंसा का शिकार बनती है। स्त्री के विरूद्ध पुरुष हिंसक होता है। चाहे वो दहेज के मामले में ही क्यों न हो। समाज में दहेज की मात्रा अधिक मिलने पर ही वर पक्ष थोड़ा बहुत सन्तुष्ट होता है अन्यथा दहेज की प्रताड़ना विकराल रूप धारण कर लेती है जिसमें स्त्रियों की बलि दी जाती है। मंजु वनिता की कहानी 'अजन्मा गंगाजल' में कहानी की पात्रा अपने अस्तित्व को खोजती हुई भगवान से न्याय मांगना चाहती है कि पितृसत्ता में स्त्री की दशा इतनी दयनीय व घृणात्मक क्यों है? वह कहती है-"संसार में लड़की होना जैसी एक गुनाह है, एक सजा है। ये पिछले जन्म के दुष्कर्मों का फल है या पापों का प्रायश्चित या फिर कोई सदियों पुराना अभिशाप है जिससे मुक्ति पाना असम्भव है।" "कैसी विडम्बना है भगवन्। जिस घर में जन्म लिया वो मुझे परायी समझते है। जिस घर को अपना मानकर जिसके लिए सर्वस्व त्यागकर आयी वे भी मुझे अपना नहीं मानते इसलिए तो हर अशुभ के लिए मुझे जिम्मेदार समझते है।"[59] विकास नारायण राय 'स्त्री की उपस्थिति बदली है, स्थिति नहीं' में स्त्रियों को स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि समाज में स्त्री को कितना मान-सम्मान व उसके अस्तित्व को समझा जाता है- "लड़की एक वस्तु है, एक पवित्र जायदाद है, एक देह है, एक बोझ है, मर्जी से पटाई जा सकती है। पूरी तरह पुरुष पर निर्भर है, सेक्स और श्रम के लिए उपलब्ध है। सम्पत्ति में उसका हक नहीं विवाह ही उसकी नियति है।"[60]

भारतीय समाज में कई परंपराएं है जो अपने विकृत रूप के कारण अभिशाप बनी हुई है जिसमें से एक बुराई या कुरीति दहेज की है। रतिलाल शाहीन की कहानी 'अजय का दीवाली कार्ड' में उन्होंने दहेज की परंपरा के विरूद्ध एवं स्त्री के प्रति अन्याय का अभिव्यक्त किया है। वे कहते है-"हमारी परंपरा ही इतनी खराब है कि शादी होते ही लड़की को परिवार से अलग मान लिया जाता है। बिटिया को हम हमेशा पराया धन मानते है। माँ-बाप के यहाँ रहती है तो उसे पुत्र पर तरजीह दी जाती है। ससुराल जाती है तो ननद, देवर, जेठ, जेठानी, सास-ससुर सभी उसे दबाते हैं। पति अच्छा न मिले तो आग में जलने के समान ही होता है उसका जीवन।"[61]

भानु प्रताप कुठियाला की कहानी 'क्या होगा माधुरी का' में कहानी की पात्रा 'माधुरी' के विवाह के लिए एक रिश्ता आता है। 'माधुरी' बैंक मैनेजर है। रिश्ते वाले माधुरी के माता-पिता से दहेज की मांग बातों-बातों में ही करते है और कहते है-"हां बहन जी, मोहित इंजीनियर है, विदेश में इसकी पढ़ाई करवाई है, पचास लाख रुपये खर्च हो गए थे इसकी पढ़ाई के ऊपर। हमें दहेज में कुछ नहीं चाहिए, फिर भी आप अपनी बेटी को कुछ तो दोगी। कम से कम बीस-पच्चीस तोला सोना तो डालोगी। एक कार मोहित को दिलवा देना, बेशक वह माधुरी के नाम ही हो, हां थोड़ा कैश भी माधुरी के खाते में डलवा देना। दोनों के काम आयेगा। तुम्हारे चाचा जी बता रहे थे कि वह सम्पन्न है, कम से कम बीस लाख तो दे ही देंगे। वैसे तो मोहित के लिए कई रिश्ते आ रहे हैं, कल ही एक रिश्ता आया था, वह चालीस लााख देने को तैयार है पर मैं चाहती हूँ कि आप, जो मैंने कहा, वैसा ही करवा देना, हम तो आपके चाचा जी के कहने से आए हैं, बहुत पुराने परिचित हैं।"[62]

समाज में पितृसत्ता के अंतर्गत अक्सर पुरुष दहेज से असन्तुष्ट होकर स्त्री पर अन्याय करते है जबकि स्त्रियों के लिए सामाजिक न्याय की अवधारणा के तहत कानून बनाये गये है। परन्तु फिर भी पुरुष मानसिकता में परिवर्तन न लाकर अत्याचार व पुरुषत्व को कायम रखता है। समाज में पुरुष द्वारा स्त्रियों को नीचा समझा जाता है। 'अजन्मा गंगाजल' कहानी के अंतर्गत कहानी की पात्रा को दहेज के कारण उसकी सास उसे कोसती है क्योंकि वह दहेज में हीरे, जवाहरात लेकर

नहीं आई है। प्रत्येक परिस्थिति में नुकसान स्त्रियों को ही उठाना पड़ता है। उसकी सास उसे ताने मारती हुई कहती है-"ये अभागी जब से इस घर में आई है इस घर की खुशियों को गहन लग गया है।"

"क्या दिया है तेरे बाप ने, मेरा हीरा कौड़ियों में ले लिया।"

"अरे मर्द है ऐसे शौक तो करेगा ही तुझे क्या तेरे बाप की तो नहीं पीता।"[63]

मुक्ता की कहानी 'अनुत्तरित प्रश्न' में भी 'दामिनी' को उसका पति 'मिस्टर गुप्ता' पागल बताकर उसे प्रताड़ित करता है और शराब में लीन रहता है। 'दामिनी' के मना करने पर उसके मां-बाप को गलत कहने लगता है और 'दामिनी' और बेटे 'सौरभ' को घर से निकाल देता है और गुस्से में कहता है- "मै अपने पैसों से पीता हूँ... तुम होती कौन हो मुझे रोकने वाली... क्या हमें तुम्हारा बाप खिलाता है या मुझे पीने के लिए पैसे देता है। यहां रहना है तो जुबान बंद करके रहो अन्यथा तुम इस हराम के पिल्ले को लेकर जहां जाना चाहो, जा सकती हो।"[64] परिवार में गलती चाहे पति की हो या पत्नी की, अन्याय का सामना केवल स्त्री को करना पड़ता है। स्त्री द्वारा अपनी सच्चाई को व्यक्त करना भी पति के पुरुषार्थ को चुनौती देता है जिसके फलस्वरूप पुरुष मार-पिटाई व अत्याचार पर उतर आता है। मंजु वनिता की कहानी 'अजन्मा गंगाजल' में कहानी की पात्रा ससुराल में अपनी स्थिति को पुरुष वर्चस्व के तहत व्यक्त करती है कि उसका पति उस पर अत्याचार करता है। कहानी की पात्रा अपने शब्दों में व्यक्त करती हुई कहती है-"और पति.. . वो मुँह से ज्यादा हाथों से बात करते उन्हें अपनी ओर बढ़ता देख कर डर के मारे मेरी तो घिग्घी बँध जाती है। विदाई के समय मेरी माँ ने रो-रोकर कहा था- कुँवर जी मेरी बेटी तो गऊ है उसे कभी दुख न देना ससुराल आके मुझे अपनी निरीहता देखकर लगता माँ शायद ठीक ही कहती थी मै गाय ही हूँ तभी हर कोई मेरी पूँछ उमेठता है, मुझ पर बाँस उठाता है।"[65]

अनिता गोपेश की कहानी 'टैडी बीयर' में कहानी की पात्रा का विवाह एक कम्प्यूटर इंजीनियर लड़के से होता है जिसका खुद का मकान तक नहीं होता है और दहेज की मांग की जाती है पढ़ाई और पद के नाम पर। विवाह को व्यापार बनाकर लड़के की समाज में बोली लगती है जितनी ऊँची बोली उसी से विवाह

सम्पन्न होता है। लड़की के घरवाले लड़के की स्थिति को परखते हुए उसे ज्यादा दहेज देते है और घर भी बनवा देते है। लड़की के पापा विवाह के दौरान दहेज की बात करते हुए कहते है- "हम काम शुरू करवा आये है- छुटकू को भेज दे, उन्हें आइडिया है, खड़े-खड़े बनवा देंगे- हमारी लड़की को ही रहना है- बनवा देने में हर्ज क्या है। इसके एवज में तिलक में पैसा कम करने की बात पर बड़ी कहा-सुनी हुई। कैश तो कम किया गया पर गाड़ी देने की बात बनी रही।"[66] कहानी की पात्रा विवाह को लेकर अपने सुखद भविष्य के सपने देखा करती है लेकिन उसे सब कुछ विपरीत मिलता है जिसमें स्त्री की खुशी कोई मायने नहीं रखती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के तहत उसे दिया गया दहेज तो पारंपरिक प्रथा है, वह उसके बारे में विचार करती हुई सोचती है- "ये कमरा, उसके घरवालों के पैसे से चाचा का बनवाया हुआ। सोफा, पलंग, म्यूजिक सिस्टम, टी०वी० रैफ्रिजरेटर, डाइनिंग टेबिल, कपड़े, गहने सब उसकी तरफ से मिले हुए। जिस कार पर बैठकर इस घर आयी-पिता की दी हुई। बिस्तर, कालीन, वाशिंग-मशीन, बर्तन जो सिरहाने रखा गया। सब कुछ तो उधर से मिला हुआ है- तो यहाँ इस समय यहाँ का क्या है? जहाँ तक दिमाग जाता है सब कुछ उधर का तो, यहाँ का क्या है? यह... यह आदमी जो बगल में लेटा है गले में सोने की चेन, हाथ में घड़ी और उंगली में हीरे की अँगूठी पहने... वह? इसी एक आदमी को पाने का सपना देखती रही थी। इतने दिनों से? यह आदमी जो जीवन में सब कुछ कर चुका है- एक पारम्परिक शादी के सिवाय और जो उससे अक्षत-योनी होने का आश्वासन भी चाहता है कुछ ज्यादा महँगा नहीं पड़ा क्या?"[67]

हीरा लाल कर्दम की कहानी 'बहूरानी और दहेज' में भी ससुराल में बहू के साथ अन्याय किया जाता है। मायके वाले अपनी बेटी के सुखद भविष्य के लिए दहेज देते है परंतु पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुष दहेज मांग कर अपने वर्चस्व व मान-सम्मान को बढ़ावा देता है कि उसे इतना ज्यादा दहेज मिला है। ज्यादा दहेज का मतलब समाज में ज्यादा मान-सम्मान। स्वयं की स्थिति कोई मायने नहीं रखती है वह तो पुरुष है उसके अपने अधिकार है। कहानी में 'चम्पा' ने अपने पुत्र 'दीपक' का विवाह प्राईमरी पाठशाला के सेवा निवृत सहायक मुख्य अध्यापक की बेटी से सम्पन्न हुआ। 'चम्पा' घर आई अपनी चार-पाँच सहेलियों को अपने बेटे

'दीपक' के विवाह की बातें बढ़ा चढ़ा कर करती है और फिर अपनी बहू को आदेश देकर बुलाती है कि हमारे पास बैठे और कुछ अपने बारे में बताए लेकिन वह कुछ बोलने से या बात करने से मना कर देती है। लेकिन उसे विवश होकर बात करने के लिए कहा जाता है तो बहू रानी अपनी सास 'चम्पा' की तरफ देखते हुए कहती है- "आप सब मुझे बोलने के लिए बाध्य कर रही है। अतः मैं आपके समक्ष अपनी बात कहने का दुस्साहस कर रही हूँ, मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।"[68] बहूरानी दहेज प्रथा के कारण अपने मन की पीड़ा व अन्याय को व्यक्त करती हुई आगे कहती है- "आंटी जी। आप सब और अम्मा जी जिस सोफा में धंसी हुई बैठी है, जिसकी उषा और आशा आंटी ने विचित्र ढंग से प्रशंसा की है, इसे मेरे पूज्य पिता जी ने दिया है। आप सब इस कूलर की शीतल वायु का आनन्द लेकर वार्तालाप कर रही हैं और आपने जो चुस्की ले-लेकर धीरे-धीरे जिस शर्बत का स्वाद चखा है, कूलर, फ्रिज, लेमन सैट ट्रे आदि सब मेरे पूज्य पिता जी की ही देन है। हां-आंटी जी। बिल्लू भैय्या रंगीन टी०वी० देख रहे जो कि आधुनिक स्टैंड में रखा हुआ है और टी०वी० प्लेयर आदि मेरे पूज्य पिता जी की देन है।"[69]

'चम्पा' अपनी बहू की तरफ क्रूर दृष्टि रखते हुए घूरती है। लेकिन उसकी बहू पुनः बोलना प्रारम्भ करती है। वह आगे कहती है-"आंटी जी। अम्मा जी जिस आतिशबाजी तथा बैण्ड बाजे की जमकर प्रशंसा कर चार-चांद लगाएं है। जो आपने अपने कानों से सुना है, उनका भुगतान हेतु पूज्य पिता जी ने मेरे ससुर जी को एक लाख रुपये की धनराशि नकद दी थी और बाद में सम्पूर्ण स्वागत समारोह का खर्चा भी पूज्य पिता जी को झेलना पड़ा।" "आंटी जी। वो देखिए बाहर लान में खड़ी अम्मा जी के मंझले बेटे की गाड़ी अर्थात् मेरे 'जीवन साथी' जिस 'स्विफ्ट डिजायर' कार को दौड़ाते हैं, वह भी मेरे पूज्य पिता जी का ही आशीर्वाद है जिसका मूल्य साढ़े चार लाख है। आंटी जी ! मेरे पिता जी बेचारे इन लोगों की मांग पर मांग अर्थात् चक्रवर्ती मांग से अत्यन्त दुखित हो गये थे। यह इस कार के लिए अड़ गये थे, आखिर मेरे स्वाभिमानी पूज्य पिता जी क्या करते? आखिरकार उन्हें इनकी यह गरीबी भी दूर करनी पड़ी?"[70]

बहू के मुंह से ये बातें सुनकर 'चम्पा' हैरान हो जाती है लेकिन वह बोलना बंद नहीं करती क्योंकि ससुराल पक्ष से उन्हें अन्याय ही अन्याय मिला है जिसका

आनंद उसकी सास के साथ-साथ पूरा परिवार उठा रहा है वह आगे कहती है- "हां आंटी जी। अम्मा जी की रसोई के स्टोर रूम में जो स्टील अलमारी है और उसके अन्दर ढेर सारे स्टील बर्तन, उत्तम क्वालिटी की क्रॉकरी एवं अम्मा जी के कक्ष में जो लॉकर वाली गोदरेज है और उसमें रखे सोने-चांदी के आभूषण, मूल्यवान वस्त्र भी मेरे पूज्य पिता जी की असीम कृपा का ही प्रतिफल है।" बहू आगे की बात बड़ी स्पष्टतापूर्वक बताते हुए कहती है- "मैं तो, ये बताना ही भूल गई थी। वास्तव में वो इनकी गुप्त मांग थी। टीका व लगन में इनकी सूची अनुसार दो लाख रुपये नकद और मूल्यवान सामान आदि भी प्रसाद स्वरूप भेंट किए थे।"[71] अचानक ही उसकी सास 'चम्पा' गुस्से से भड़क उठती है और पूरे आक्रोश में आकर अपनी बहू को डांटते हुए कहती है- "ए लड़की। खबरदार। बहुत तेरा बेहूदा भाषण सुन लिया। चल जुबान को लगाम दे यदि अब जुबान चलाई तो, तेरी जुबान पकड़ कर खींच लूंगी। जा अन्दर से जलपान। लेकर जल्दी से आ। अब बैठी क्यों है?"[72]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रभाव से 'चम्पा' अपनी बहू पर रौब झाड़ती है। बहू अपनी सास की सहेलियों को ससुराल पक्ष के अन्याय के बारे में आगे बताती हुई कहती है-"आंटी जी ! वे प्राईमरी पाठशाला के सहायक मुख्य अध्यापक के पद से सेवा निवृत हैं। उन्होंने मेरे सुखमय जीवन के लिए अपना दो मंजिला भवन बेच दिया। इन लोगों की हटधर्मी के कारण मेरे पूज्य पिताजी फक्कड़ और बेघर होकर सड़क पर आ गए। आज वे किराये की कोठरी में अपने जीवन की अन्तिम सासें गिन रहे हैं।"[73] उत्पल कुमार दहेज प्रथा के कारण अन्याय एवं कानून व्यवस्था के अंतर्गत अन्याय का प्रकट करते है कि समाज में पितृसत्ता का शासन कायम रह सकें इस पर अपने विचारों की प्रस्तुति देते हुए कहते है-"दहेज के लेन-देन तथा उससे जुड़ी हिंसा-हत्या के खिलाफ कानून तो बने हुए हैं और भी नये-नये कानून बनते जाते है; लेकिन उन्हें लागू करने की कोई व्यवस्था और मशीनरी नहीं बनायी गयी है। इसका मतलब यही हो सकता है कि राज्य और शासन-प्रशासन को स्त्रियों की दशा सुधारने में कोई दिलचस्पी नहीं है, उनकी दिलचस्पी पितृसत्ता और पुरुष वर्चस्व को बनाये रखने में है।"[74]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के तरह स्त्री को विवाह से पहले और विवाह के बाद दोनों स्थितियों में पितृसत्ता के शासन को झेलना पड़ता है। क्योंकि वह स्त्री है वंश परंपरा को बढ़ाने वाली नहीं है, वह पराया धन है जो एक दिन विवाह करके दूसरे घर चली जाएगी वही उसका असली घर होगा। कमलेश कुमारी रवि की कहानी 'साहसी लड़की' में 'कमली' जो अपने ही घर में अपने माता-पिता के पितृसत्ता के प्रभाव से बच नहीं पाती है और उसे अपने ही घर लड़की होने के नाते अन्याय का सामना करना पड़ता है। 'कमली' की मां उसे फटकारती है और 'कमली' के विरोध करने पर उसे लड़की होने का अहसास दिलाते हुए गुस्से से कहती है-"तू हथिनी जैसी होती जा रही है, तुझे खिलाया-पिलाया हमारे किस काम आयेगा? तू तो सारा जोड़ा-जगोड़ा साथ ले जायेगा, तू कौन सा मेरे कुल को चलायेगी?"[75] 'कमली' पढ़-लिख कर मिलिट्री में भर्ती होकर देश की सेवा करना चाहती है। इसलिए अपनी एक सहेली 'सरोज' के साथ सुबह दौड़ लगाने का अभ्यास करती है। घर में ये बात किसी को पता नहीं होती है। तो एक दिन 'कमली' के पिता उसे देख लेते है तो 'कमली' अपने पिता को बताती है कि वह मिलिट्री में जाने की तैयारी कर रही है। 'कमली' की बात सुनते ही उसके पिता गुस्से से भड़क उठते है और पुरुष मानसिकता के तहत उसे कहते है-"घर पर काम करो नहीं तो हाथ-पैर तोड़ दिये जायेंगे।"[76]

परिवार में कन्या के प्रति मानसिकता पितृसत्ता व्यवस्था में बदली नहीं है आज भी उसे बोझ ही समझा जाता है। पहले तो पैदा होते ही मातम छा जाता है। फिर उसकी शिक्षा को लेकर अन्याय किया जाता है 'कमली' की माँ उसे प्रताड़ित करते हुए कहती है-"कहाँ से ढूंढेगें हम इतना पढ़ा-लिखा लड़का? क्या हमें भीख मंगवायेगी? हमारे पास खर्च करने के लिए इतना पैसा नहीं है।"[77] पितृसत्तात्मक व्यवस्था में 'कमली' के साथ हुए लिंग आधार पर भेदभाव व शिक्षा में भेदभाव को मंजु वनिता की कहानी 'अजन्मा गंगाजल' में भी कहानी की पात्रा के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती है कहानी की पात्रा को हमेशा उसकी माँ डाटती है-"घर में रहा कर अब तू सयानी हो रही है। कहाँ खेलती रहती है लड़कों के साथ? पिता जी आकर फिर चिल्लायेंगे।"

"जब भी देखो, मुझे ही डाँटती हो भैया से कभी कुछ नहीं कहती।"

"उसका क्या? वो तो लड़का है।"

"हर पल लड़की होने का अहसास मुझे कैसी हीनता से भर देता था ये आपको क्या मालूम है?"

"अक्सर जब मैं पढ़ती तो माँ कहती- "जा ! भाई को खाना परोस दे।"

वो कभी एक गिलास पानी भी अपने हाथ से लेकर नहीं पीता और मैं, उससे बड़ी कक्षा में पढ़ने पर भी पढ़ाई के साथ-साथ घर के कामकाज में भी हमेशा माँ का हाथ बँटाती थी। न जाने किस संविधान में लिखा है कि घर का हर काम औरतें ही करेंगी।"[78] 'औरत होने का गुनाह' कहानी में भी 'सुनीता' के साथ लिंग आधार पर भेदभाव किया जाता है उसे शिक्षा प्राप्त करने नहीं दिया जाता है। परिवार में मां की मृत्यु के बाद 'सुनीता' की घोर उपेक्षा होती है और कहा जाता है-लड़कियों को पढ़ा-लिखाकर क्या करना है? इनसे क्या हमें नौकरी करवानी है?"[79] 'सुनीता' को अपने भाईयों व पिता द्वारा अन्याय मिलता है तो वह स्वयं की दशा पर विचार करती हुई कहती है-"हम तो घर के कामकाज के लिए ही जन्मीं थी। इसी में हमें निपुण होना था ताकि शादी के बाद ससुराल में चौका-बर्तन, झाड़ू-बुहार से लेकर सुई-धागे तक के घर के सारे काम हम बखूबी निभा सकें। हमें इस घेरे में से बाहर नहीं निकलना था चूँकि हम लड़कियाँ थी। औरत होना एक गुनाह ही तो है जिसकी सजा हमें बचपन से ही मिलनी प्रारम्भ हो जाती है ताकि हम इसकी अभ्यस्त हो सकें।"[80]

भारतीय संविधान की कानून व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है लेकिन पितृसत्ता के प्रकोप से पुरुष की इच्छा के अनुसार ही स्त्री शिक्षा व नौकरी कर सकती है। जिससे स्त्री को अन्याय का सामना करना पड़ता है। 'सौदामिनी' कहानी के अंतर्गत 'सौदामिनी' शिक्षा के प्रति जागरूक है परन्तु उसकी सहेलियों के साथ परिवार में शिक्षा को लेकर अन्याय होता है। 'सौदामिनी' की सहेली 'राजबाला' पढ़ाई की इच्छा को लेकर मन ही मन बेबस है, क्योंकि जब उसके पिता और भाई चाहेंगे तभी वह पढ़ सकती है वह 'सौदामिनी' से कहती है-"अगर अम्मा और बड़े भैया न चाहें तो भला मैं आगे कैसे पढ़ सकूँगी? और फिर बी०ए० कर लेने से ही क्या होगा? अन्त में तो वही ढाक के तीन पात रह जाएँगे। विवाह होते ही सारी पढ़ाई....।"[81] 'राजबाला' 'सौदामिनी से'

कहती है कि तेरी शिक्षा में तो न्याय मिलेगा तुझे-"सदु ! भई, तुम्हारी जिद तो चल जाएगी। तुम्हारे बाबूजी बैरिस्टर है। विलायत हो आए हैं। वह तुम्हें कॉलेज ज्वाइन करा देंगे। शादी में भी तुम्हारी सम्मति लेंगे। किन्तु हमारे लिए तो यह नहीं हो सकता।"[82] 'सौदामिनी' की दूसरी सहेली 'उमा' कहती है कि पितृसत्ता समाज में स्त्री शिक्षा को प्राथमिकता प्रदान नहीं करते बल्कि कन्याओं को जल्दी से शादी करके अपने फर्ज से निपटते है जिसमें स्त्री की कोई राय नहीं ली जाती है वह आगे बताती है-"जाति और समाज का भी तो डर है। हमारी अम्मा को तो अभी से सारा पड़ोस टोकता है कि पढ़ाए जाते है। क्या नौकरी कराएँगे? इतनी बड़ी हो गई, शादी नहीं करते।"[83] 'सौदामिनी' की अन्य सहेली 'तारा' भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में अन्याय को झेल रही है वह बताती है कि उसकी अम्मा तो चाहती है कि वह बी०ए० की पूरी पढ़ाई कर ले परन्तु उसके ताऊ जी नहीं चाहते क्योंकि परिवार में बड़े होने के नाते उनकी ही चलती है। 'सौदामिनी' 'तारा' की बातें सुनकर एक दम से कहती है-"अरे वाह ! जब अम्मा तक राजी हैं तब और कौन-सी रूकावट लग गई?"

'तारा' कहती है-"ताऊ जी नहीं चाहते। भला बाबू जी और अम्मा उनके विरूद्ध क्या कर सकते है?"

"यह खूब है। अपनी सन्तान का भला-बुरा तुम्हारे बाबू जी की अपेक्षा शायद ताऊ जी अधिक सोच सकते है?"

"वे घर के बड़े हैं भाई।"[84]

'सौदामिनी' की दादी भी उसकी शिक्षा अधूरी छुड़वाना चाहती है। वह 'सौदामिनी' को शिक्षा के लिए कभी न्याय प्रदान नहीं करना चाहती, उसे बस 'सौदामिनी' के विवाह की चिन्ता है। 'सौदामिनी' की दादी कहती है-"तो अब पढ़ाने की जरूरत ही क्या है?"

"कौन उसे नौकरी करनी है।"[85]

'सौदामिनी' की सहेली 'तारा' का विवाह हो जाता है। 'सौदामिनी' उससे मिलने जाती है तो 'तारा' की माँ 'सौदामिनी' को बैठने के लिए कहती है-"अरे सदु रानी ! तुम तो इतनी जल्दी चल पड़ीं, बैठो तो सही।"

"नहीं चाची जी, मुझे पढ़ना है, अब आज्ञा दीजिए।"

"तो बेटी, ऐसा भी पढ़ना क्या है।" 'तारा' की ताई कहती है- "कोई नौकरी करनी है?"[86]

मैत्रयी पुष्पा की कहानी 'बेटी' में कहानी की पात्रा 'वसुधा' अपनी सहेली 'मुन्नी' की माँ उसकी शिक्षा के प्रति विचार करते हुए कहती है-

"चाची, मुन्नी को स्कूल भेज दो न!"

'मुन्नी' की माँ 'वसुधा' को 'मुन्नी' की पढ़ाई में रूचि न दिखाते हुए 'वसुधा' की शिक्षा को लेकर व्यंग्य करती हुई जवाब देती है- "अरी बिटिया, क्या कहती हो! वह लड़की जात, कहाँ जाएगी और क्या करेगी पढ़-लिखकर! तुम्हारी बात और है वसुधा, अकेली औलाद, बेटा-बेटी तुम्हीं हो अपनी माँ की, सो जिंदगी-भर पढ़ो तो कोई कुछ कहने वाला नहीं, बाप न भइया।"[87] 'मुन्नी' भी 'वसुधा' की तरह शिक्षा ग्रहण करना चाहती है परन्तु उसकी माँ शिक्षा न दिलवाकर घर व खेतों के काम में 'मुन्नी' को व्यस्त रखती है। 'मुन्नी' अपनी शिक्षा के प्रति हुए अन्याय को लेकर अपनी माँ से न्याय की माँग करती हुई विरोध करती है-"अम्मा, तुम मेरे साथ जो कर रही हो, वह कुछ अच्छा नहीं कर रही। तुम पाँच-पाँच लड़कों को पढ़ा सकती हो, लेकिन मेरे लिए तुम्हारे घर अकाल है --- मेरी किताब-कापी के पैसे तुम्हें भारी है अम्मा।" 'मुन्नी' की माँ उसकी बाते सुन कर क्रोधित हो जाती है और कहती है-"रोज एक ही बात की हठ करती है तू। हमने कह दिया न, नहीं पढ़ा सके तुझे ---"

"क्यों नहीं अम्मा, मुझे क्यों नहीं?"

"चुप होती है कि नहीं? बहुत जुबान चल गयी है तेरी। तू लड़कों की बराबरी करती है! बेटे तो बुढ़ापे की लाठी है, हमारी, हमें सहारा देंगे। तू पराए घर का दलिद्दर। तेरी कमाई नहीं खानी हमें -- कह दिया, कान खोल कर सुन ले।"[88]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी को विभिन्न प्रकार के भेदभावों से होकर गुजरना पड़ता है। कदम-कदम पर अन्याय का सामना करना पड़ता है। परिवार व समाज की आधारभूत संस्था में सर्वोच्च पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही कायम है। उत्पल कुमार 'दि वायलेंस ऑफ डेवलपमेंट' के अन्तर्गत पितृसत्ता में स्त्री के अन्याय को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है उनके कथन में-"स्त्रियाँ पुरुषों के मुकाबले हीनतर सामाजिक स्थिति में रहने और अनेक प्रकार के अपमान तथा अत्याचार सहने को

मजबूर हो जाती है; (2) इसके कारण लड़कियों के माता-पिता उन्हें 'घाटे का सौदा' मानते हैं, जिसके परिणामस्वरूप स्त्रियाँ भ्रूण-हत्या और शिशु-हत्या से लेकर दहेज के लिए की जाने वाली वधू-हत्याओं तक की शिकार होती है और जनसंख्या में पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों का अनुपात घटता जाता है, (3) इसके कारण लड़कियों के माता-पिता उन्हें एक तरह का बोझ समझने लगते हैं, जिसे जल्दी से उतार फैंकना आवश्यक समझकर वे लड़कियों को पढ़ा-लिखाकर अपने पैरों पर खड़ा होने में समर्थ बनाने से पहले ही उनकी शादी कर देते हैं, (4) इसके कारण लड़कियाँ शिक्षित, प्रशिक्षित, काम करने में समर्थ और आत्मनिर्भर नहीं बन पातीं और उनके माता-पिता उनके सुखी-सुरक्षित जीवन के लिए स्वयं से ऊँची हैसियत वाला घर-वर खोजते हैं और विवाह के समय ही नहीं, बाद में भी दहेज देते रहने को विवश होते हैं, और (5) इसके कारण धनी और निर्धन, ऊँची और नीची जातियों के तथा सभी धर्मों और संप्रदायों के पुरुषों में जल्दी से जल्दी अधिक से अधिक और उपभोग के साधन जुटा लेने की प्रवृति बढ़ती है, जिससे यथासंभव अधिक से अधिक दहेज माँगने, उनके लिए स्त्रियों को सताने, उनकी हत्या कर देने और उन्हें आत्महत्या के लिए विवश कर देने जैसी प्रवृत्तियाँ पैदा होती है।"[89]

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'बिगड़ैल बच्चे' में कहानी की नायिका के दो बच्चे एक लड़का और एक लड़की की माँ है। वह ट्रेन में बैठकर अपनी बेटी 'निशि' के पास जयपुर जा रही है। सामने वाली सीट पर तीन बच्चे स्वतन्त्र रूप से बैठे है जिसमें एक लड़की भी है। कहानी की पात्रा अपनी बेटी 'निशि' के बारे में सोचती है कि मैंने उसे कितने अनुशासन में रहकर पाला है। 'निशि' आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती तो वह भी स्वतंत्र रूप से जीवन बिता सकती। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी स्वयं भी विवश है वह सोचती है-"क्या मैंने बच्चों को सुरक्षित और कठोर अनुशासन में रखकर बहुत महान काम किया है? क्या निशि इस कठोर अनुशासन और अतिरिक्त सुरक्षित वातावरण में पलकर बेहद दब्बू बन कर नहीं रह गयी है? बस शादी कर देने भर से क्या उसे सुरक्षित कर दिया हमने? अपनी होनहार एम०बी०ए० लड़की को मुम्बई जाकर एक मल्टीनेशनल कम्पनी में नौकरी नहीं करने दी...हम दोनों ही डर गये थे। कितना रोयी थी वह... यहीं रहकर करो

नौकरी... या फिर कह दिया कि शादी के बाद कर लेना। नौकरी वह भी पति चाहे तो।"[90]

एक तरफ पितृसत्ता के अंतर्गत स्त्री के प्रत्येक पक्ष में अपने इच्छा से स्वीकृति चाहता है स्त्री को पुरुष के कहने में ही चलना पड़ता है यही पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। पंखुरी सिन्हा की 'सफर' कहानी में 'पूर्वा' ट्रेन से दिल्ली जा रही है। 'पूर्वा' दिल्ली यूनिवर्सिटी में पढ़ाती है। ट्रेन में सफर करते वक्त एक स्टेशन पर कम अधेड़ उम्र की स्त्री आकर बैठती है। वह 'पूर्वा' से बातें करने लगती है वह बताती है वो अमृतसर के एक सरकारी स्कूल में पढ़ाती थी तो 'पूर्वा' प्रश्न करती हुई पूछती है कि अब क्यों नहीं पढ़ाती है। वह स्त्री पितृसत्ता के अंतर्गत अपने पति के कहने पर नौकरी छोड़ देती है और आगे कहती है- "मेरे हसबैंड ने छुड़वा दी। शादी से पहले मैं अमृतसर में आराम से रहती थी। मैं और मेरी बहन दोनों ही स्कूल में नौकरी करती थीं। शादी हुई तो हसबैंड ने कहा नौकरी छोड़ो, कलकत्ते चलो। मुझे तब यहां की हालत का कोई अन्दाजा नहीं था। जब नौकरी छोड़कर यहां आयी, तब पता चला। अब तो सत्ताईस साल हो गये।"[91] उर्वशी बुटालिया 'पितृसत्ता के भूमंडलीकृत रूप को समझना जरूरी है' में पितृसत्ता के वर्चस्व पर प्रकाश डालती है कि स्त्रियों पर पुरुषों का प्रभुत्व बहुत बढ़ रहा है। जिसका बहुत बड़ा प्रभाव स्त्रियों पर ही पड़ता है जिससे उन्हें अन्याय का रूप ही देखने को मिलता है। उर्वशी बुटालिया स्त्रियों के रोजगार को लेकर पितृसत्ता के स्वरूप को प्रकट करती हुई कहती है- "असली फर्क तो तब पड़ेगा, जब पितृसत्ता टूटेगी। लेकिन वह तो अनेक रूपों में बनी हुई है, बल्कि मजबूत होती जा रही है। उसका सबसे नया और सबसे ज्यादा मुश्किल से पहचान में आने वाला रूप भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में सामने आ रहा है। इससे जो उपभोक्तावाद बढ़ा है, वह स्त्रियों पर पुरुषों के आधिपत्य को बढ़ा रहा है। इससे रोजगार के अवसर कम हुए हैं और सरकारी नौकरियाँ न मिलने से स्त्रियों को निजी क्षेत्र की नौकरियाँ करनी पड़ रही हैं। इससे भी पितृसत्ता मजबूत होती है।"[92]

'सौदामिनी' कहानी में 'सौदामिनी' पढ़ने में होशियार व समझदार लड़की है। उसकी माँ की मृत्यु हो जाने के बाद उसके पिता 'मदन बाबू' अपना दूसरा विवाह नहीं करते है और 'सौदामिनी' को पढ़ाने के पक्ष में होते है परंतु पितृसत्तात्मक

व्यवस्था के गहरे प्रभाव से जकड़ी हुई 'सौदामिनी' की दादी 'सौदामिनी' को बहुत परेशान करती है कि उसे पढ़ने-लिखने की क्या जरूरत है उसका विवाह कर देना चाहिए। पढ़-लिख कौन-सा 'सौदामिनी' को नौकरी करनी है अगर यह ज्यादा पढ़-लिख जाएगी तो ज्यादा जुबान चलेगी और गृहस्थी संभाल नहीं पाएगी। 'सौदामिनी' अपनी दादी के अन्याय से तंग आकर गुस्से में कहती हैं' छी: ! वही है हमारा जीवन। हमारा आदर ! हम एक खिलौना हैं। उनकी इच्छा होगी तो हमें गुड़ियों की भाँति सजाकर फूलों की शय्या पर सुलाएँगे, इच्छा होगी तो फटी साड़ी से पूस के जाड़े में बरतन मंजवाएँगें, मानो तो हमारे जान ही नहीं है। न उस जान में मान-अपमान की भावना और न इच्छा-आकाँक्षा। वाह रे हिन्दू समाज! और उसके विरूद्ध जुबान हिलाओ तो हम उच्छृंखल है, विलासी हैं, गृहस्थी बनाने के योग्य नहीं है ! खूब!"[93] राजेन्द्र यादव समाज में पुरुष व्यवस्था को लेकर बात करते हैं कि समाज में पुरुष व स्त्रियों की समानता पर भेदभाव किये जाते है यह सब पुरुष की मानसिकता के कारण है जो पुरानी-परंपराओं में जकड़ी हुई हैं। राजेन्द्र यादव कहते है-"भारतीय संस्कृति का जो प्रदत्त रूप है, वह मूलत: पुरुषवादी है। सामंती, पौराणिक, किस्म का या गुजरे जमाने का। पुरुषवाद का एक नमूना यह है कि उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थ बताये गये हैं। पुरुषार्थ यानी पुरुषों के लिए। यानी यह सिर्फ पुरुषों की व्यवस्था है। स्त्रियों के लिए इसमें कोई गुंजाइश नहीं है। सामाजिक सफलता, सामाजिक निर्णय, सामाजिक सम्मान, सामाजिक उत्थान-सब कुछ पुरुषों के लिए ही है। परिवार में बेटे को बेटी से श्रेष्ठ माना जाता है। इसके जरिये शुरू से ही पुरुष वर्चस्व की मानसिकता या संस्कार बना दिये जाते है। बेटा ही पिता को मुखाग्नि देता है। उसके बिना बाप स्वर्ग में नहीं जा सकता। इसीलिए सारे राजा और पुराने लोग बेटे के लिए तड़पते थे। बेटा ही उत्तराधिकारी होता था उनकी संपत्ति का। उसी के लिए विरासत छोड़ी जाती थी। यह विरासत भौतिक ही नहीं, धार्मिक और सांस्कृतिक भी होती थी, जिससे पुरुष के वर्चस्व वाली व्यवस्था चलती रहे।"[94]

भारतीय संविधान में कानूनी व्यवस्था का स्वरूप पितृसत्तात्मक ही रहा है जिसके तहत पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण ही रहता है। दिल्ली उच्चतम न्यायालय में वकालत कर रहे अरविन्द जैन का मानना है कि स्वतंत्र भारत में स्त्री शिक्षित,

जाग्रत एवं सशक्त भी हुई है परंतु पितृसत्ता के तहत असमानता आज भी बरकरार है वे कहते है-"कानून और न्याय व्यवस्था का मानसिक ढांचा तो मूलत: सामन्ती, उपनिवेशवादी और मर्दवादी ही बना हुआ है कोई आमूल-चूल परिवर्तन तो हुआ नहीं। ऐसे में स्त्री के विरूद्ध हिंसा या यौन हिंसा (मानसिक या शारीरिक उत्पीड़न, शोषण और उल्लंघन) के अपराधियों को सचमुच कैसे दण्डित किया जाए या सुधारा और रोका जाए? नि:संदेह आजादी के बाद स्त्रियों मे शिक्षा के साथ-साथ जागरूकता और चेतना ही नहीं, विरोध शक्ति भी बढ़ी है। लेकिन इसके अनुरूप पुरुष मानसिकता में उतना बदलाव नहीं दिखाई देता, जितना अपेक्षित है। स्त्री के बढ़ते विरोध-प्रतिशोध में पितृसत्ता का दमन, उत्पीड़न, शोषण और अत्याचार भी लगातार बढ़ता गया है।"[95] मृणाल पांडे समाज में स्त्री की दशा व उसके साथ पितृसत्तात्मक व्यवस्था के दौरान अन्याय व अत्याचार की अन्दरूनी स्थितियों का पर्दाफाश करते हुए स्त्री अन्याय का मूल्यांकन करती है कि किस तरह से समाज स्त्री के प्रति जागरूक है। वे कहती है- "उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और मध्यप्रदेश जैसे राज्यों के सुदूर ग्रामीण इलाकों में आज भी महिलाओं के लिए वह सांघातिक विकृत रूढ़िवादी सामन्ती व्यवहार बरकरार है जिसकी मार से यहाँ औरतों की तादाद पुरुषों के मुकाबले बेतरह घटती जा रही है और निरक्षता जड़ जमाये बैठी है। इन राज्यों में आज भी पर्दा-प्रथा परिवार की समृद्धि का मानदंड है। जाति-बिरादरी के बाहर प्रेम करने के दंड में जातीय पंचायते प्रेमियों को फाँसी की सजा मुकर्रर करती हैं। मीडिया को सगर्व बताया जाता है कि अमुक गाँव में कन्या-शिशु हत्या के चलते सैकड़ों बरस से एक भी बारात नहीं आयी है और मंडियों में अनाज मिले न मिले, औरतों की खरीद-फरोख्त, आलू-प्याज की तरह आज भी सम्भव है।"[96]

जलसमाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत पुरुष को बदलाव लाना होगा। कानून व्यवस्था में सामाजिक न्याय की अवधारणा में स्त्री के अधिकारों का तभी पूर्ण रूप से प्रयोग होकर न्याय मिल सकता है। "महिलाओं को केवल कानूनी अधिकार प्रदान दिये जाने मात्र से वे समानाधिकार का उपभोग कर सकने में सक्षम नहीं है। आवश्यकता है सामाजिक परिवर्तन की और यह सामाजिक परिवर्तन न तो एक दिन में सम्भव है और न केवल महिलाओं के ही सामर्थ्य की बात है। वस्तुत:

सामाजिक परिवर्तन तभी सम्भव होगा जब स्त्री और पुरुष दोनों ही सामाजिक परिवर्तन हेतु प्रयास करे।"[97]

बानो सरताज की कहानी 'कब्रिस्तान' के अंतर्गत कहानी की पात्रा 'कृष्णा' अपनी इच्छाओं का दमन करने वाले अपने पति के घर बेबसी से अपना जीवन व्यतीत करती है। 'कृष्णा' आधुनिक व शिक्षित नारी है परन्तु अपने पति और पुत्र की इच्छा के बिना कोई कार्य नहीं कर सकती है। 'कृष्णा' स्त्रियों की परिस्थितियों को लेकर अपने विचारों में कहती है-"लाख, स्त्री-मुक्ति, स्वतंत्रता, समान-अधिकार की बात हो, नारी अब भी उसी स्थान पर है जहाँ वर्षों पहले थी। नारे लगाने, जुलूस निकालने, भाषण करने, खोखले दावे करने में कुछ नहीं रखा। आवश्यकता है मानसिकता बदलने की। पुरुष के मन में अपने को श्रेष्ठ समझने का भाव है वह नारी को अपने से श्रेष्ठ न सही, अपने बराबर समझने की मानसिकता दे, तदनुरूप व्यवहार करने की बुद्धि दे, तब ही परिस्थिति में सुधार आ सकता है।"[98]

4.1.2 कन्या भ्रूण हत्या :

इक्कीसवीं सदी में सर्वप्रथम कन्या वध अपनी चरम सीमा पर विराजमान है। भले ही भारतीय संविधान की कानून व्यवस्था के अनुच्छेद 15 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया हो कि लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा और इसके साथ अनुच्छेद 15 की धारा 3 में स्पष्ट रूप से महिलाओं और बच्चों के लिए राज्य को विशेष प्रावधान बनाने की छुट दी गई हो परन्तु आज भी कन्या को लेकर समाज में अन्याय का जहर फैला हुआ है। स्त्री व पुरुष के बीच असमानता होने पर भी स्त्री स्वयं भी पुरुष के अधीन होकर अन्याय का साथ देती है क्योंकि पुरुष स्त्री को ऐसा करने पर विवश करता है।

वर्तमान में सामाजिक न्याय की अवधारणा में स्त्री के अधिकारों व न्याय प्रदान करने वाली कानून व्यवस्था के बावजूद स्त्री की स्थिति भारत में कुछ इस प्रकार स्पष्ट है- "भारत में लड़का, लड़की से हम मामले में श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि लिंगभेद पर आधारित समाज में पुरुषों का वर्चस्व है। इसलिए सृष्टिसृजनकृता के खिलाफ किया गया कोई भी गलत काम उसके पैदा होने के बाद से नहीं बल्कि उसके पैदा होने के अंदेशे से शुरू हो जाता है। भारत में कन्यावध कोई नई बात नहीं है। मगर अभी हाल के दशकों में एक नई संस्कृति ने जन्म लिया है कि

जन्म पूर्व ही शिशु के लिंग का पता कर कन्या होने पर उसे जन्म लेने के अधिकार से वंचित करना।"[99] दीपक शर्मा की कहानी 'पितृतन्त्र' में 'कान्ता भनोट' अपनी सहेली को अस्पताल साथ ले जाना चाहती है क्योंकि उसे तीसरी बार गर्भपात करवाना है। 'कान्ता' की बातें सुन उसकी सहेली उसे कहती है-"कल सुबह न चले?"

"नहीं, सुबह उधर अस्पताल में बहुत भीड़ रहती है। इस समय ठीक रहेगा। दोपहर का समय मैंने ही चुना है। उधर डॉक्टर मेरा इन्तजार कर रहे है।"

"क्या हुआ?"

"मुझे गर्भपात करवाना है।"

"ऐसी छोटी जगह पर।" जहां अस्पताल में सामान्य सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं, यह ठीक होगा क्या?"

'कान्ता भनोट' कहती है-"लखनऊ मैं नहीं जा सकती"

"मगर क्यों? वहाँ तो मेहरा सर हैं। उनकी वजह से आपको सर्वोत्तम और बेहतर सुविधा रहेगी।"

"पापा की वजह से ही तो वहां जा नहीं रही। उधर अस्पताल में मुझे सभी डॉक्टर जानती है। पहली दोनों बार वहीं गयी थी। लेकिन तब मम्मी जीवित थीं और उन्होंने दोनों बार गर्भपात वाली बात पापा से छुपा ली थी।"[100]

'कान्ता' अपनी सहेली को स्वयं की स्थिति बताते हुए आगे कहती है-"लेकिन राजेश्वर नहीं चाहते कि मैं तीसरा बच्चा जनूँ। जब मेरा दूसरा बेटा भी पहले की तरह सिजेरियन ऑपरेशन द्वारा पैदा हुआ था तो डॉक्टर ने पापा को चेतावनी दी थी, आपकी बेटी का तीसरा ऑपरेशन जानलेवा हो सकता है। तभी पापा ने राजेश्वर को आदेश दिया कि कान्ता की सुरक्षा के प्रति तुम्हें पूर्णतया सावधान रहना होगा। लेकिन पापा के इस आदेश पर उनके परिवार नियोजन निर्देशालय की मोहर नहीं लगी थी। सो राजेश्वर चूक जाते है और अबकी तो वह तीसरी बार चूके हैं।"[101] 'कान्ता भनोट' जब गर्भपात के दौरान भ्रूण निकलवा रही होती है तो डॉक्टरों द्वारा उसकी नस फाड़ दी जाती है और 'कान्ता' का अधिक रक्तस्राव पर नियंत्रण न होने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। समाज में नारी की दशा बहुत ही दर्दनाक है। पुरुष एक तरफ तो गर्भपात का अन्याय करवाकर

स्त्री को पीड़ित करता है। 'कान्ता' की मृत्यु के बाद उसका पति 'राजेश्वर' अपने दोनों बेटों को उनके नाना के पास छोड़कर दूसरे विवाह की तिथि तय कर लेता है।

ज्ञानी देवी की कहानी 'कॉश !' में भी कहानी की पात्रा को पहले से ही एक बेटा और एक बेटी है। परंतु अब वह भ्रूण की हत्या करवाकर गर्भपात करवाना चाहती है। उसका पति उसे कहता है-"तुम इतना परेशान क्यों होती हो? आजकल साइंस इतनी विकसित हो गई है कि सब कुछ मिनटों में और सुरक्षित हो जाता है। तुम्हें नहीं चाहिए तो कल डॉक्टर के पास चले चलते है और शाम तक घर वापस आ जाएँगें।"[102] पति की बातें सुनकर कहानी की पात्रा को थोड़ी सांत्वना मिलती है और मन ही मन सोचती है कि एक बार विचार कर लिया जाएं तो तुरंत ही अपने पति से कहती है-"क्यों ना हमें दो-तीन महीने वेट कर लें? तब टेस्ट करवा के पता भी चल जाएगा कि क्या है? अच्छी चीज हुई, तो रख लेंगे वरना रफा-दफा करवा देंगे।"[103] समाज में पुत्र की कामना की जाती है और कन्याओं को बोझ माना जाता है। ऐसे में कहानी की पात्रा और उसका पति निश्चय कर लेते है कि उन्हें दूसरी बेटी नहीं चाहिए। उसका पति उससे पूछता है-

"बोलो क्या करना है?"

"जैसी तुम्हारी मर्जी।"

"मेरी क्या? तुम्हें बताओं, इसमें तो तुम्हारी मर्जी चलेगी। तुम कहती हो रखना है तो ठीक है। वरना डाक्टर से टाइम ले लेते है और आ जाएँगे जब वे कहेंगे।" "ठीक है। इस जमाने में दो-दो बेटियाँ पालना कौन-सा आसान काम है? जाने ही दें। पूछ लो डाक्टर से कब आएँ?"[104] वे दोनों डॉक्टर के पास जाकर अपने विचारों को स्पष्ट ही रख देते है-"डाक्टर साहब ! हमारे पास पहले भी दो बच्चे हैं, एक बेटा एक बेटी। हमें और नहीं चाहिए बस। इसलिए इसे.... साफ ही.. .. कर दीजिए।"[105]

उत्पल कुमार कन्याओं के प्रति भेदभाव एवं कन्या भ्रूण हत्या को लेकर अन्याय के प्रति अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहते है- "भारतीय समाज में स्त्रियों के प्रति जन्म से पहले ही भेदभाव, अन्याय और हिंसक अत्याचार शुरू हो जाते हैं। भ्रूण-परीक्षण द्वारा पता लगाकर कि गर्भस्थ शिशु नर है या मादा, बहुत-सी

लड़कियों को तो गर्भपात के जरिये दुनिया में आने से ही रोक दिया जाता है, बहुत-सी लड़कियाँ जन्म लेने के बाद मार दी जाती है या रोग और कुपोषण के द्वारा स्वत: ही मर जाने दी जाती है।"[106] मो॰ आरिफ की कहानी 'फूलों का बाड़ा' में 'महारानी सेतिया' जो विवाहित है अपने भ्रूण को गिरना चाहती है। वह डॉ॰ वोहरा से बात करती तो वह डॉक्टर 'महारानी सेतिया' को कहता है- "कोई अटेंडेंट हो तो ठीक है.... नहीं तो अकेले आ जाइए... नो प्रॉब्लम। हाँ, एक बार और। वैसे ऑपरेशन से उसका कुछ लेना देना नहीं है। मैं आज कम्प्यूटर पर रिचेक कर रहा था.... रिपोर्ट परफेक्ट है... सिर्फ सेक्स ऑव द फीट्स में पढ़िये-फीमेल। मशीन की गड़बड़ी... क्या कहे एनी वे फॉरगेट इट। हार्डली मैटर्स। लड़का हो या लड़की... हटाना तो है ही। आप कल आ जाएँ।"[107]

आज समाज में कन्या भ्रूण हत्या के प्रचलन से डॉक्टरों की भी कन्याओं के प्रति यही राय है क्योंकि समाज कन्याओं के प्रति बोझिल मानसिकता रखता है और वह कन्या भ्रूण की हत्या करके पाप करने में भी सन्तुष्ट है। 'महारानी सेतिया' का डॉक्टर कहता है-"किसने रिकमेंड किया मेरा नाम? आप भविष्य में भी कभी भी आ सकती है। हमारे पास तो रोज ही एक-दो केस आते है। आजकल लड़की चाहता ही कौन है।"[108] 'महारानी सेतिया' जब कन्या भ्रूण हत्या करवाने जाती है तो भ्रूण की आवाज उसे सुनाई देती है और कहती है-"महारानी सेतिया, तुम मुझे मारना चाहती हो न। बोलो, मारना चाहती हो न। मत करो ऐसा मेरा साथ। मैं आना चाहती हूँ। सचमुच मैं आना चाहती हूँ। मेरे ऊपर दया करो।"[109] कन्या भ्रूण अपनी माँ 'महारानी सेतिया' से स्नेहपूर्वक करुणामयी पुकार लगाती हुई आगे कहती है- "सुनो तुम सोचती हो मुझे काटकर फेंक दोगी। नहीं कर सकती तुम ऐसा। अगर ऐसा करोगी तो तुम्हारी जान पर बन आउँगी, समझ लेना। तुम्हें भी साथ ले जाऊँगी मैं और सुनो, उसको तो तुम पैदा करने वाली थी.... अब मेरी दफा क्या हो गया महारानी सेतिया।"[110]

ज्ञानी देवी की कहानी 'काश !' में भी कन्या भ्रूण अपनी माँ को आवाज देती है, पुकारती है कि उसे भी जन्म लेकर ये दुनिया देखनी है। उसे भी जन्म लेने का अधिकार है-"ये मुझे अन्धा बना देंगी किरणें माँ। रोको इन्हें। मैं संसार अपनी आँखों से देखना चाहती हूँ।"[111] 'फूलों का बाड़ा' कहानी में भी कन्या भ्रूण

की आवाज अपनी माँ को पुकारती है। इसी प्रकार से इस कहानी में भी कन्या भ्रूण अन्याय के प्रति आवाज उठाती है न्याय मांगती है-"देखो ऐसा मत करो। तुम्हीं मुझे बचा सकती.... मेरी मालिक हो तुम... मुझ पर रहम करो महारानी सेतिया... आने दो मुझे, चाहे फिर मुझे छोड़ देना, मत कहना मैं तुम्हारी बेटी हूँ। लेकिन मैं आना चाहती हूँ, सचमुच मैं इस दुनिया में आना चाहती हूँ....माँ।"[112] 'महारानी सेतिया' कन्या भ्रूण की हत्या करवा देती है और 'डॉ॰ शबनम' से पूछती है कहा है वो? डॉ॰ शबनम उसे कूड़े दाने की तरफ इशारा करते हुए बताती है। आज डॉक्टरों द्वारा भी कन्या भ्रूण हत्या का घिनौना रूप सामने आता है जिस कानून व्यवस्था के अंतर्गत गर्भपात करना अवैध करार दिया गया है। कानून कोई मान्य नहीं रखता है 'डॉ॰ शबनम' महारानी सेतिया से कहती है-"देखिए, आजकल के डॉक्टरों की तरह हम गटर डिस्पोजल में यकीन नहीं करते। एक तो फीट्स के लिए यह डिस्ग्रेसफुल है, दूसरे खतरा अलग से। फीट्स पूरा ग्रो कर गया था, नहीं तो अन्दर ही अन्दर टुकड़े-टुकड़े करके साफ कर देती। गटर के साथ प्रॉब्लम यह है कि सफाई वालों को हफ्ता न दो तो बड़ी आफत करते है। चैनल वालों को खबर कर देते हैं।"[113] 'महारानी सेतिया' कहती है कि कोई दूसरा उपाय नहीं है तो डॉ॰ शबनम तुरन्त कहती है- क्यों नहीं? है, दूसरा रास्ता भी है, लेकिन रकम लगेगी... लगभग दो हजार। पाँच सौ में हास्पिटल स्टॉफ, पाँच सौ मेरा कमीशन। बगल में फूलों का बाड़ा है न... यही बगल में। एक हजार बाड़े वाले को देंगे। वह सब कुछ कर देता है उसी बाड़े में।"[114]

विनोद कालरा की कहानी 'फैसला' में 'सत्या' और उसका पति अपनी बेटी के गर्भ को गिराना चाहता है। भ्रूण हत्या के साथ-साथ अपनी बेटी की भी हत्या करना चाहते है। उसकी बेटी 'नीरू' निद्रोष है, पीड़ित है अन्याय पर अन्याय झेलती है। परंतु कहीं भी न्याय मिलने की आशा दिखाई नहीं देती है। 'नीरू' का पिता उसकी माँ को चुपचाप सलाह देता है और कहता है-"आज नहीं तो कल दुनिया को पता तो चलेगा ही, इसलिए नीरू को दूध में जहर देकर मार दो। बच्चा भी मर जाएगा और नीरू भी। न कहीं जवाबदेही का खौफ होगा और न कोई चिन्ता, हाँ बच्ची के जाने का गम जरूर होगा।"[115] गर्भावस्था समापन चिकित्सा अधिनियम 1971 में पारित किया गया कि गर्भपात की समस्या तब पड़ती है जब महिला का

गर्भ धारण के समय कोई खतरा या बच्चें को खतरा हो उनके जीवन सम्बन्धी परन्तु वर्तमान में तो लिंग की जांच करवा कर कन्या हो तो सफाया करवा दिया जाता है जिससे लिंगानुपात में स्त्री-पुरुष के स्तर में गिरावट आ जाती है। कानून व अधिनियम बनाने के बाद भी अन्याय पर अन्याय हो रहा है। "1971 में संसद द्वारा 'टर्मिनेशन ऑफ प्रेग्नेंसी अधिनियम-1971' पारित किया गया है जिसके अनुसार कुछ विशेष परिस्थितियों में गर्भपात करने को पूर्णतया वैध करार दे दिया गया। यह अधिनियम महिलाओं के स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिए बनाया गया था और इसके अंतर्गत महिलाएं विशेषज्ञा के कहने पर औषधियों की सहायता से अपने गर्भ का समापन कर सकती थी। इस अधिनियम के अनुसार :

1. यदि गर्भ को बनाए रखना स्त्री के मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य के लिए खतरनाक हो तो गर्भपात किया जा सकता है।
2. यदि होने वाले बच्चे के शारीरिक या मानसिक रूप से विकलांग पैदा होने की आशंका हो तो भी गर्भपात किया जा सकता है लेकिन यह कम गर्भ के 20 सप्ताह तक ही हो सकता है।
3. गर्भपात से पूर्व स्त्री तथा उसके संरक्षकों की सहमति आवश्यक है।
4. गर्भपात से संबंधित सभी कागजात संबंधित चिकित्सक को गुप्त रखने होंगे।

चूंकि गर्भ में पल रहे बच्चे के लिंग का पता लगाकर कन्या-भ्रूण के गर्भपात के मामले में तेजी से वृद्धि हो रही थी जिस कारण हमारे देश में स्त्री-पुरुष अनुपात गड़बड़ा गया था इसलिए अब भ्रूण के लिंग को पता लगाने वाले परीक्षण (अल्ट्रासांउड) पर कानूनन रोक लगा दी गयी है और इसके आधार पर कन्या भ्रूण के गर्भपात को अवैध घोषित कर दिया गया है।"[116]

कानून बना देने व अधिनियम पारित कर देने पर भी अन्याय पर शिकंजा कसा नहीं गया है। संविधान के चौथे (IV) अध्याय में अनुच्छेद 42 के अंतर्गत कार्य और प्रसूति ने न्यायिक तथा मानवीय परिस्थितियों का आयोजन किया गया है ताकि न्याय प्रदान किया जा सके। परंतु समाज के ऊपर संविधान, कानून न्याय व्यवस्था का कोई असर नहीं है। समाज तो केवल हिन्दू धर्म की प्राचीन परंपराओं एवं पुत्र कामना में विश्वास रखता है। एस॰ आर॰ हरनोट की कहानी 'चीखें' में

'माघी राम' पुत्र की कामना करता है और पुत्र को पाने के लिए न जाने कितनी मन्नतें माँगता है ताकि उसकी वंश परंपरा आगे बढ़ सके। पुत्र की चाह में 'माघी राम' पागल-सा हो जाता है और भगवान् से प्रार्थना करता हुआ कहता है-"देवा तेरे को दो बकरे... एक जात। देवी महाराणी.... तेरे को एक भैंसा.... भगवान् तेरी कथा... सत्य नारायण की कथा... हे देवा, हे भगवान्.... बस बेटा ही देणा देवा.... बेटा ही...।"[117] इसी प्रकार की पुत्र कामना की चाह 'कुम्भीपाक' कहानी में भी देखी जा सकती है। कहानी का पात्र 'कालिया' चार बेटियों के बाद पत्नी की पाँचवी प्रसव पीड़ा के दौरान भगवान् से प्रार्थना करता कहता है- "हे भगवान ! इस बार अगर बेटा हो जाए तो शान्ति को फिर कभी इस मुसीबत में नहीं डालूँगा।"[118]

पितृसत्ता के अन्याय के तहत स्वयं स्त्री भी बुरी तरह से प्रभावित हुई है। एक तरफ स्त्री जो स्वयं कन्या को जन्म देने में स्वतंत्र नहीं है तो दूसरी तरफ वह भी पुरुषों की भांति पुत्र प्राप्ति की इच्छा रखती है। भारतीय हिंदू समाज में व्रत व त्यौहार पति व पुत्र के लिए ही मनाये जाते हैं। मो॰ आरिफ की कहानी 'फूलों का बाड़ा' में कहानी की पात्रा 'महारानी सेतिया' जो गर्भपात करवाना चाहती है उसकी दो बेटियाँ 'जूही' और 'खुशबू' होती है। 'महारानी सेतिया' भगवान के प्रति अपनी इच्छा को व्यक्त करती हुई पूछती है-"हे भगवान, हे मेरे बनाने वाले, हे स्त्रीमन को बनाने वाले और जानने वाले, क्या एक बेटे की माँ कहलाने की अनबुझी प्यास थी यह?"[119] भारतीय संस्कृति की हिंदू प्राचीन परंपरा के अनुसार पुत्र ही सब कुछ है। जिससे महिलाएं घरों व परिवार समाज में पुत्र प्राप्ति के लिए न जाने कितने अंधविश्वासों का सहारा लेती है जिसके अंतर्गत केवल स्त्री को ही दोषी माना जाता है। "आज भी औरतें बाजारीकरण के दौर में एक पुर्जा मात्र नहीं बन पाई हैं। न केवल आर्थिक रूप से तंगहाली का शिकार महिलाओं में मनोरोग व्याप्त है बल्कि अच्छा खासा कमाने वाली पढ़ी लिखी औरतों में भी असुरक्षा, कुंठा और हीनभावना के रोग दिखाई पड़ते हैं। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि आज के शिक्षित और वैज्ञानिक युग में इन मनोवैज्ञानिक समस्याओं का निदान पाने के लिए देसी नुस्खें, झाड़फूंक और अंधविश्वास की शरण ली जाती है। लड़का पैदा करने की चाह में शिक्षित महिलाओं को बेहुदे कर्मकाण्ड करते पाया जाता है। महिला मनोरोग, नारी

प्रगति के आंकड़ों का काला अध्याय है।"[120] सुभाष नीरव की कहानी 'औरत होने का गुनाह' में 'सुनीता' अपनी माँ की दशा को लेकर परेशान है। क्योंकि परिवार में उसकी दादी से लेकर उसके पिता तक सब 'सुनीता' की माँ से पुत्र की प्राप्ति चाहते है क्योंकि परिवार में पुत्र ही वंश को आगे बढ़ाता है दो बेटियों के बाद उसकी दादी 'सुनीता' की मां से आदेशात्मक स्वर में कहती है- "इस घर हमें लड़की नहीं, लड़का चाहिए। समझी।"[121]

इक्कीसवीं सदी में भी आखिर समाज स्त्रियों के लिए बदला नहीं है। पुत्र न होने पर महिलाओं को ही दोषी ठहराया जाता है। स्त्री रोग विशेषज्ञ डॉ॰ अंजली गोयल का कहना है कि लड़के के जन्म के लिए महिलाओं को दोष देना गलत बात है वे आगे बताती है-"लड़की या लड़के के जन्म के लिए महिलाओं को दोष देना गलत है। बच्चे के जन्म के लिए पुरुष जिम्मेदार होते है। महिला के एक्स क्रोमोसोम से जब पुरुष का वाई क्रोमोसोम मिलता है तो ही लड़के का जन्म होता है। महिला के सिर्फ एक्स क्रोमोसोम होते है, जबकि पुरुषों में एक्स व वाई दोनों क्रोमोसोम होते हैं।"[122] सन्तोष गोयल की कहानी 'इन्तजार करो वक्त का' में कहानी का पात्रा को उसकी सास पुत्र को जन्म देने के लिए कहती है कि बेटा ही परिवार को चलाता है वंश को आगे बढ़ाता है। ससुराल में सास द्वारा नारी को पुत्र जन्म के लिए प्रताड़ित किया जाता है। कहानी की पात्रा को उसकी सास चेतावनी देती हुई कहती है-"अरी... सुन.... छोरा वोरा जन दे तो ठीक.... ना तो दूसरा ब्याह रचा देंगे छोरे का.... सुन लै.... फिर न कहयौ बताया को ना था।"[123] समाज में स्त्री को विभिन्न पक्षों में अन्याय की मार झेलनी पड़ती है। कहानी का पात्रा अपनी सास के तानों से पीड़ित है। अब उसने एक बेटी को जन्म दिया तो वह भी मरी हुई थी। उसकी सास पुत्र इच्छा रखने वाली तथा कन्या के प्रति अपनी मानसिकता को व्यक्त करते हुए कहती है-"इब्ब कोई आस न बची री। मरा बच्चा जना री तूने। कुच्छों न हो सकैगा इब्ब।"

"लड़की की वैसे भी कीमत ही क्या? वह जिन्दा होती तो भी मरे की तरह, आखिर छोरियों की बिसात ही क्या?"[124] अंजु दुआ जैमिनी स्त्री विमर्श के अंतर्गत 'मोर्चे पर स्त्री' में कन्या भ्रूण हत्या का प्रचलन पितृसत्ता द्वारा दहेजप्रथा को लेकर भी माना है। वे दहेज प्रथा व कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ परिस्थितियों का

मूल्यांकन करती हुई कहती है- "समाज में दहेज प्रथा का प्रचलन न होता तो कन्या भ्रूण हत्या की नौबत ही न आती। कोई समस्या अपने आपमें भयंकर तब बनती है जब वह जी का जंजाल बन जाती है। परिपाटी इसलिए चलन में आ जाती है, क्योंकि इससे व्यक्ति को सहूलियत होती है, पर इसके विपरीत यदि परिपाटी न रहकर नासूर बन जाए तो यह अंगों को गला सकती है और इससे जान भी जा सकती है। समय रहते इसका उपचार जरूरी है। दहेज प्रथा भी समाज के लिए नासूर बन चुकी है। अब तक हजारों बेटियों को खा चुकी है, यह प्रथा। हजारों इसके चलते ताने सुनती, तिल-तिल मर रही हैं। नरक बन चुका है उनका जीना।"[125] 'इन्तजार करो वकत का' कहानी में कहानी की पात्रा को उसकी सास द्वारा प्रताड़ित किया जाता है कि विवाह के बाद उसने अब तक इस घर के वारिस को जन्म क्यों नहीं दिया? पुत्र के जन्म के लिए अपनी बहू को हमेशा कोसती है और कहती है- "पत्ता न कैसी बहू मिली हैगी.... बंजर जमीन.... निपूति.... अरी। लुगाई तो घरां की लखमी हौवें.... पूत जनै हैंगी.... इब्ब हमने भी तो पूत जना है.... एक ही हैगा पर घर में रौसनी तो उसी से हो आवै... पर.... इसनै कै किया... न लखमी घरां आई.... न घर का वारिस।"[126] चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की कहानी 'गृहस्थी का सुख' में भी सास द्वारा बहू को बेटे के लिए प्रताड़ित किया जाता है कि उसने परिवार में वंश-बेल को आगे नहीं बढ़ाया तो सास अपने बेटे 'शिवसहाय' का दूसरा विवाह केवल पुत्र प्राप्ति और वंश परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए कर देती है और पहली बहू को कोसती हुई कहती है- "अरे, मैं सब जानती हूँ जैसी यह है।"

"नहीं तो भगवान का इतना 'कोप' क्यों रहता। जहाँ इतना 'रूप' लिखाकर लाई थी, वहाँ धी-पूत भी लिखा लाती। इसने तो हमारी बंस-बेल ही मिटाने की सोच ली थी। शिब्बू तक को अपना गुलाम बनाकर छोड़ा था। यह तो मेरा ही दम था जो समय रहते चेत गई और दूसरा ब्याह करके ही छोड़ा। नहीं तो यह महारानी तो ऐसी है कि जिनके काटे का मन्त्र न मिले....।"[127] बहू द्वारा बोलने पर सास फिर आक्रोश में आ जाती है और उसे प्रताड़ित कर गरज कर बरसती हुई कहती है-"रूक क्यों गई, कोस ले जी भरकर। पर कहे देती हूँ जो मेरे बेटे-बहू को कुछ हो गया तो तू जानेगी कुलच्छनी। राम-राम करके अब इस छोटी बहू ने

जरा बंस-बेल चढ़ने का आस दिखलाई है, सो तू दिन-रात दाँत-पर-दाँत बजाकर चढ़ने न दे, डायन कहीं की।"[128]

रेणु त्रिपाठी महिलाओं के प्रति अन्याय को लेकर चिंता व्यक्त करती है प्रत्येक स्थिति में स्त्री को ही क्यों दोषी माना जाता है जबकि उसका कोई कसूर नहीं होता है। स्त्री-पुरुषों की समानता की बात की जाती तो यहां पुरुषों को अनदेखा क्यों किया जाता है? सारा दोष स्त्रियों पर ही थोपा जाता है। वे कहती है- 'हमारी प्राचीन परंपराएं भी महिलाओं के प्रति हिंसा को उत्प्रेरित करती हैं। हमारी संस्कृति में पुत्र-रत्न की प्राप्ति एक सौभाग्य माना जाता है और प्रत्येक परिवार की इच्छा होती है कि उसकी बहू अपनी कोख से एक पुत्र को ही पैदा करे। यदि किसी स्त्री को बार-बार कन्या ही पैदा होती है तो सारे परिवार का कहर उस पर टूटने लगता है। यदि हम जीवविज्ञान की दृष्टि से देखें तो भ्रूण के सेक्स निर्धारिण के लिए पिता जिम्मेदार होता है न कि माता। वैसे तो किसी बच्चे का पुत्र या पुत्री होना पूर्णतया प्रकृति पर निर्भर करता है लेकिन यदि इसमें मानवीय दखल मान भी लिया जाए तो उसके लिए पुरुष शुक्राणु जिम्मेदार हैं न कि स्त्री। लेकिन बारंबार कन्याओं को जन्म देने के लिए स्त्री को ही दोषी मान लिया जाता है और पारिवारिक हिंसा का दंश उन्हें ही झेलना पड़ता है।"[129] 'इन्तजार करो वक्त का' कहानी में सास द्वारा प्रताड़ित बहू को कोसती है कि अब की बार भी उसे कन्या को जन्म दिया वो भी मरी हुई। उसे कष्टों पर कष्ट देते हुए कहती है- "ससुरी। रोटी भी न सकी.... मेरी तबीयत ठीक न थी... पर लाटनी ने भी कुछ न किया... इब्ब मरी छोरी पैदा की.... आराम भी चाहैवे.... बड़ी लाट हैगी.... बैट्ठी हैगी विहां कोने में मस्ताती... कै परोसेगी खसम ने.... और ससुरे ने... भाग जली.. .. मरन जोगी... मर क्यों न जावै.... म्हारे भाग ही खोटे हैंगे....।"[130]

अंजु दुआ जैमिनी कन्या भ्रूण हत्या को लेकर संविधान द्वारा बनाये गए अधिनियमों के पक्ष में अपने विचार प्रस्तुत करती हुई कहती है-"भारत में 'घरेलू हिंसा निरोधक विधेयक' पास हो चुका है। वस्तुतः कानून बना देने मात्र से कुछ नहीं होता। भ्रूण हत्या की समस्या को जो आज चिंता का विषय है-इसका मूल माना जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। भ्रूण हत्या संबंध कानूनों का सख्ती से अनुपालन एवं लोगों में सही समझ पैदा करने हेतु कदम उठाया जाना जरूरी है।"[131]

सन्तोष गोयल की कहानी 'गुलबिया' में 'गुलबिया' अपने अम्मा-बाबा की इकलौती बेटी है। उसके अम्मा-बाबा सोचते है कि लड़की का क्या है वो तो किसी के साथ विवाह करके एक दिन चली जाएगी। धीरे-धीरे 'गुलबिया' बड़ी होती जाती है। उसके अम्मा और बाबा पुत्र की इच्छा रखते हुए कहते है-"खुदा ने एक छोरा दे दिया होता... तो इत्ता मजबूर तो न होते न।"[132] यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानी 'कालकी गोरकी' कहानी में पुत्र प्राप्ति की कामना को देखा जाता है। कहानी में 'बन्ने सिंह' के घर एक साथ दो बेटियों का जन्म होता है तो उसकी पत्नी 'नीमकी' उदास होकर शोक मनाती हुई अपने पति से कहती है- "हमारे भाग बहुत खराब हैं। ईश्वर एक छोटा दे देता तो उसके घर में क्या कमी हो जाती?"[133] 'नीमकी' पुत्र न पैदा होने से भगवान को दोष देती है। क्योंकि समाज में पुरानी परंपराओं और अंधविश्वासों के तहत पुत्र प्राप्ति ही संपूर्णता मानी जाती है। 'नीमकी' दु:खी होकर अपने पति 'बन्नेसिंह' को कहती है- "सच कहूँ, भगवान हमें दो छोरियों की जगह अगर एक छोरा दे देता तो कितना अच्छा होता। पाँच बरस हो गये हैं, लगता है जैसे कोख के बूदँड़ लग गया है।"[134] 'नीमकी' बिना पुत्र के उदास रहती है कि उसको बेटा नहीं हुआ। वह गांव के देवी-दर्शन करने प्रतिदिन मन्दिर जाती है और प्रार्थना करती है कि देवी मां उसे एक बेटा दे दे। इसी तरह की कामना मृदुला गर्ग की कहानी 'तीन किलो की छोरी' में 'लल्लीबेन' से स्पष्ट की जाती है वह पुत्र की प्राप्ति को भाग्य का दोष, व भगवान का दोष भी मानती है और विलाप करती हुई कहती है- "मेरी किस्मत ही खराब है। कितने वरत-उपवास किये, कितनी मन्नत-मनौती मांगी, सब बेकार, भगवान ने एक ना सुनी।"[135]

जया जादवानी की कहानी 'ये रात कितनी लंबी है' में कहानी की पात्रा एक बेटी को जन्म देती है तो उसकी माँ बेटी के जन्म को लेकर खुश नहीं होती है बल्कि अपने भाग्य को कोसती हुई और पुत्र की कामना करती हुई कहती है-"वाहे गुरु, फिर लड़की? किन पापों का दंड दे रहा है तू?"[136] समाज में लड़की दुख का कारण मानी जाती है। उसका कोई अपना अस्तित्व नहीं होता है। सब कुछ समाज में पुत्र ही प्रदान करता है पुत्री नहीं। मृदुला गर्ग की कहानी 'तीन किलो की छोरी' में 'शारदाबेन' लड़की को जन्म देती है जिसका वजन तीन किलो का है।

लेकिन 'शारदाबेन' का पति इस लड़की के जन्म से खुश नहीं होता है कि दो लड़कियों के बाद तीसरी भी लड़की हुई है। गाँव में 'मोटीबेन' 'शारदाबेन' की लड़की के बारे में कहती है-"बस एक अड़चन है। है साली छोरी। छोरा होता तो खुले हाथों देता बापू इसका।"[137] कहानी में 'शारदाबेन' का पति अपने बेटी के प्रति घृणात्मक व्यवहार रखता है और कहता है- "एक हमारी को देखो, छोरी जनी है, वह भी तीसरी, और खा-पीकर खटिया तोड़ रही है।"[138] मंजु वनिता की कहानी 'सागर और सीपियाँ' में 'स्मिता' को दो बेटियां 'दिशा और निशा' होती है ससुराल में 'स्मिता' जब पुत्र को जन्म नहीं दे पाती है तो उसे पति एवं सास द्वारा प्रताड़ित की जाती है उसे बार-बार अन्याय को झेलना पड़ता है उसकी सास 'स्मिता' को बातें सुनते हुए अपनी बड़ी ननद से कहती है- "दो-दो लड़कियाँ वह भी ऑपरेशन से, हमारा तो वंश ही मिट गया।"[139] 'स्मिता' ये बातें सुन कर अन्दर ही अन्दर पीड़ा महसूस करती है और अपनी बेटी 'निशा' को धिक्कारती हुई कहती है-"क्या जरूरत थी तेरी? इससे तो अच्छा होता तू पैदा होते ही मर जाती। तू न मरती तो मैं मर जाती। कम से कम इस नरक से तो छुटकारा मिलता।"[140]

समाज में पहले स्त्री के साथ असमानता का भेदभाव कर उसे सम्मान नहीं दिया जाता क्योंकि वो स्त्री है अगर वो कन्या को जन्म देती है तो उसे समाज से और भी ज्यादा धिक्कारा जाता है क्योंकि उसने पुत्र को जन्म नहीं दिया। पुत्र जन्म देने से उसे थोड़ी-बहुत ससुराल की जगह मिल जाती है अन्यथा तो अन्याय ही अन्याय उसके पक्ष में आता है। कृष्ण राम देवले 'भ्रूण हत्या' के बढ़ते प्रकोप की स्थिति के बारे में जानकारी देते हुए कहते है-"लड़कियों की भ्रूण-हत्या पर काफी कुछ लिखा गया है। लड़कियों को नहीं बचाएंगी तो बेटों के लिए बहुएं मिलना मुश्किल हो जाएगा। विडम्बना देखिए कि गांव से ज्यादा शहरों में लड़कियों की संख्या घट रही है। पढ़े-लिखे माता-पिता द्वारा भी बेटी नहीं चाहना बेहद शर्म की बात है। कई शहरों में शादी के लिए लड़कियां नहीं मिल रही है। सनातन काल से धन के लिए लक्ष्मी, शक्ति के लिए दुर्गा और बुद्धि के लिए सरस्वती की पूजा की जाती है, लेकिन घर में बेटी होने पर उसे स्वीकार नहीं किया जाता। समाज को अब भी चेत जाना चाहिए अन्यथा परिवार की संस्था का ह्रास हो जाएगा।"[141]

इक्कीसवीं सदी में कानून व्यवस्था में दंड संहिता की धाराओं के अंतर्गत प्रावधान निहित है। परन्तु समाज गहरी नींद में सोया हुआ है उसे कोई परवाह नहीं है। सामाजिक न्याय की अवधारणा के अंतर्गत स्त्री के न्याय के प्रति अनेक अधिकार प्रदान किये गये है। "आज दुनिया के इक्कीसवीं सदी में प्रवेश के बावजूद भी लड़की के जन्म होने पर मातम सा छा जाता है एवं पुत्री जन्म को हेय दृष्टि से देखा जाता है एवं कहीं-कहीं पर पर लड़की का जन्म होते ही मार दिया जाता है अथवा जिन्दा दफना दिया जाता है अथवा गर्भावस्था में जाँच कराई जाकर लड़की होने का अन्देशा मात्र होने पर गर्भ गिरवा दिया जाता है। ऐसी खतरनाक स्थिति से बचने के लिए दण्ड संहिता की धारा 315 के तहत अगर कोई व्यक्ति किसी शिशु के जन्म के पूर्व कोई ऐसा कार्य करे जिससे शिशु जीवित पैदा ही नहीं हो अथवा पैदा होते ही उसकी मृत्यु हो जाये अथवा जन्म होने के पश्चात् ऐसी कन्या की मृत्यु कारित कर दे तो ऐसे अपराधी को दस वर्ष तक की सजा एवं जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किया जा सकेगा। इसके अलावा अगर इस प्रकार के घृणित कार्य करने से गर्भवती स्त्री की मृत्यु हो जाती है तो अपराधी व्यक्ति मानव वध का दोषी होगा एवं उसे धारा 316 के तहत दस वर्ष तक की सजा एवं जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किया जा सकेगा।"[142]

मुक्ता की कहानी 'जनम दुख' में पुत्र प्राप्ति की पीड़ा को सास द्वारा व्यक्त किया गया है। वह अपनी बहू को दोष देती है कि वंश परंपरा को चलाने वाले पुत्र को जन्म क्यों नहीं दिया। कहानी में 'मिथिलेश कुमारी' सलाह देती है कि शहर में अपनी बहू को ले जाकर प्रसूति कार्य करवायें। गांव में ज्यादा सुविधा न होने के कारण बच्चे की जान को खतरा हो सकता है। 'कैलाश यादव' बच्चे को जन्म देते ही बच्चा मृत्यु को प्राप्त हो जाता है जो लड़का पैदा होता है तो उसकी सास दहाड़े मार-मार कर रोती है- "अरे ऽऽ अपशकुनी ऽऽ पैदा होते ही डस गईल हमार बंस-बेल ऽऽऽ। अरे ऽऽऽ हमार सुगना ऽऽ हो ऽऽ"[143] जया जादवानी की कहानी 'अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है' में भी पुत्र कामना को स्पष्ट रूप से उजागर किया है। कहानी की नायिका अपने पति 'विकी' को प्रसव पीड़ा के दौरान अपने पास बुलाना चाहती है। वह अपने भाई से कहकर अपने पति को फोन करने के लिए कहती है। लेकिन नायिका की बड़ी ननद अपने भाई को

बुलाने की मनाही करते हुए तुरन्त कहती है-"अरे, वो क्या करेगा आकर? और अब कुछ ही घण्टों की तो देर है। इधर बेटा हुआ उधर फोन कर देंगे। फिर तो सभी को करना होगा।"[144] पुत्र प्राप्ति की खुशी का इन्तजार पूरा परिवार बेसब्री से करता है। बेटे की कामना के लिए न जाने कितनी मन्नतें मांगी जाती है। अस्पताल में किसी स्त्री को तीन लड़कियों के बाद लड़का होता है तो सबके चेहरे खिल जाते है बधाईयां दी जाती है। ठीक लड़की के विपरीत स्थिति होती है। लड़के की दादी खुशी से फूली नहीं समा रही होती है और उसे खुशी में छेड़ते हुए कहते है- "ए अम्मा, तेरी बहू तो गोरी है, पोता काला।" 'अम्मा' कहती है- "काला है तो क्या हुआ? है तो लड़का।"[145]

प्रवीण शुक्ल समाज में स्त्रियों की स्थिति व अन्याय के प्रति जागरूक करते है कि समाज में शिशु हत्या कन्याओं की हत्या के कारण समाज को गहरा आघात पहुँच गया है जिससे पूरे समाज को बदलना होगा वे आगे अपने कथन की पुष्टि करते हुए कहते हैं- "21वीं सदी में भी हम शिशु कन्याओं की हत्या को नहीं रोक पाये है। हमारा समाज दूसरे स्तर पर भी महिलाओं के साथ भेदभाव बरतता है। कुल मिलाकर महिलाओं को सही अर्थों में तभी सशक्त किया जा सकता है जब पूरे समाज, खासकर पुरुषों का नजरिया बदले। जरूरत इस बात की है कि महिलाओं का सशक्तिकरण सिर्फ कागजों पर ही न हो, बल्कि इसमें पूरे समाज की भागीदारी हो।"[146]

वर्तमान समय में कन्या को बचाने के लिए आठवें फेरे का संकल्प लिया गया है। माना गया है कि कन्या वध के प्रति शपथ और विवाह के दौरान आठवां फेरा समाज की मानसिकता में बदलाव लायेगा। इक्कीसवीं सदी में आवश्यकता है कि समाज में प्रत्येक स्त्री व पुरुष मानसिक रूप से सशक्त होकर कन्या भ्रूण हत्या व कन्याओं की स्थिति में परिवर्तन लाएं। रेणुका नैयर के शब्दों में-"बेटी के प्रति लोगों की मानसिकता बदलने की जरूरत है। इस समस्या को खत्म करने के लिए हमारी इच्छा शक्ति का भी होना जरूरी है। लेकिन इसे समय पर नहीं छोड़ा जा सकता। सरकार को महिलाओं के शोषण के विरूद्ध और अधिक सख्त तथा प्रभावशाली कानून लाने होंगे।"[147] समाज में लोगों को मानसिक रूप से परिवर्तन लाकर बेटा और बेटी की असमानता को मिटाया जा सकता है। तभी कन्याओं के

वध पर रोक लगाई जा सकती है। सही अर्थों में सामाजिक न्याय की अवधारणाओं व कानून व्यवस्था का लाभ उठाया जा सकें।

4.1.3 कामकाजी नारी के प्रति अन्याय :

वर्तमान की परिवर्तनशील परिस्थितियों में स्त्री पढ़-लिखकर घर की चारदीवारियों से बाहर निकल कर कामकाज की दुनिया में शामिल हो रही है। कामकाजी महिलाओं को घर और बाहर दोनों जगहों की जिम्मेदारियां उठानी पड़ती है और दोगुनी समस्याओं को झेलना पड़ता है। कार्यस्थल पर कामकाजी स्त्रियों को नौकरी के दौरान अन्याय का सामना करना पड़ता है। संविधान के अंतर्गत कानून-व्यवस्था के तहत स्त्रियों की रक्षा और छेड़खानी निरोधक कानून के अधिनियम बनाये गये है लेकिन फिर भी स्त्रियों को शोषण का शिकार होना पड़ता है। रत्न कुमार सांभरिया की कहानी 'चपड़ासन' में 'मीता' के पति 'मुनीन्द्र' के देहांत के बाद 'मीता' को अपने डेढ़ साल बच्चा और अपनी बूढ़ी सास के लिए तहसील के कार्यालय में चपड़ासी की नौकरी करती है। परन्तु 'मीता' पर भ्रष्ट कर्मचारी अपनी बुरी दृष्टि रखते है। जिससे 'मीता' को अन्याय झेलना पड़ता है। तहसीलदार सहित अन्य कर्मचारी मीता के घर जाते है और शोषित करने का प्रयास करते हुए कहते है- "मीता, साहब नेक है। चपड़ासी तक की सुध लेते हैं, घर आ कर।" वह कर्मचारी आगे कहता है- "तहसीलदार साहब को मुनीन्द्र के चले जाने का उतना ही दु:ख है, जितना खुद की पत्नी के दिवंगत हो जाने का है।"[148] 'मीता' पर गलत दृष्टि रखते हुए आगे कहता है- "मीता, सावन है।" तहसीलदार के पक्ष में ओ० ए० आगे 'मीता' को अपने चंगुल में फसाने के लिए आगे बात जारी रखता है- "मीता, साहब की दो बेटियां है। दोनों घर-बार की हुई। एक लड़का है। वह भी अपने बीवी बच्चों के साथ मौज में है। साहब इतने बड़े बंगले में घुटे घुटे, खाये-खाये, रोये-रोये रहते हैं। मीता, साहब का अर्दली है न, वह आधा बावला है। वह रोटियां कच्ची पक्की सेंक कर पटक देता है।"[149]

'मीता' सब बातें सुनने के लिए विवश है कि कामकाजी स्त्री पर उसके तहसील व अन्य कर्मचारी अपने शोषण का शिकार बनाना चाहते है और 'मीता' को लालच देकर अन्याय करना चाहते है-"मीता पाक कला का जो कुदरती हुनर औरत के कोमल हाथों में है, वह मरद की सख्त हत्थलों में कहां। साहब की घंटी

वह अर्दली सुन लेगा। गाड़ी तुम्हें घर से बंगले से जाएगी। बंगले से घर छोड़ जाएगी। बस तुम्हें तनखा लेने दफ्तर आना होगा।" तहसीलदार 'मीता' की तरफ आकर्षित होते हुए आगे बढ़ता है और कहता है-"मीता, अफसर और चपड़ासी की दूरियां ऑफिस तक है। आओ.....।"[150] 'मीता' अपने प्रति अन्याय को मन ही मन सहती है परंतु कुछ व्यक्त नहीं करती। तहसीलदार 'मीता' को अपने घर रखने के लिए विवश करता है जब 'मीता' की तरफ से कोई उत्तर नहीं मिलता तो कार्यालय के चपड़ासी नेता 'मीता' पर गुस्सा व्यक्त करते हुए कहता है- "साब, चपड़ासी है। चपड़ासी को चपड़ासी की नौकरी करनी पड़ेगी। आप आज ही आदेश निकाले दें। मैं सब देख लूंगा। जिद्दन छोड़ी है। लगान कसे काबू आएगी।"[151]

ज्ञान प्रकाश विवेक कहानी 'हमारे स्कूल की मैडम' कहानी की पात्रा 'नन्दिनी मैडम' स्कूल में पढ़ाती है। स्कूल इंस्पेक्टर स्कूल का मुआयना करने आते है तो 'नन्दिनी मैडम' के प्रति पुरुष अहं भाव को दर्शा कर अपमान व अन्याय करता हुआ कहता है-"मैडम, आप बच्चों को भ्रमित कर देंगी।"

"सर, मैं भ्रमित करने वाली शिक्षा नहीं देती।"

"इतने छोटे बच्चे ग्लोब को देखकर क्या समझेंगे?"

"सर, ग्लोब तो एक तरह से प्रैक्टिकल है... बच्चे विजुअल को जल्दी समझते है।"

"मुझे समझा रही हो?"

"नहीं सर, समझा नहीं रही। अपना अनुभव बता रही हूँ।"

"सरकारी स्कूलों की मास्टरनियाँ क्या पढ़ाती हैं.... मेरा बहुत ज्यादा अनुभव है।"

"गुनाह तो मेरा है जो तुम्हारी क्लास में चला आया। ग्लोब सामने रखा और खुद आराम किया। ये सब हरामखोरी के तरीके है।"

"सर, आप गाली दे रहे है।"

"बहस मत कर।"

"मैं बहस नहीं कर रही।"

"तू बहस कर रही है और जो मेरे साथ बहस करता है उसकी बोलती बन्द कर देता हूँ मैं।"[152]

अंजु दुआ जैमिनी स्त्री के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण का विश्लेषण करते हुए मानती है कि स्त्री चाहे शिक्षित हो, आर्थिक स्तर पर मजबूत हो फिर भी समाज में असमानता का भेदभाव बरता जाता है- "यदि स्त्री पढ़ी लिखी हो और आर्थिक तौर पर सुदृढ़ हो जाए तो क्या उसके प्रति समाज का रवैया बदल जाता है? यह प्रश्न नारी वर्ग के मन में सहज उत्पन्न होता है। ऐसा प्रश्न उठना स्वाभाविक है, क्योंकि विकसित देशों में जहाँ स्त्री का जीवन-स्तर ऊँचा है वहां भी उसका दमन होता है। वहां भी असमानता मौजूद है।"[153]

कामकाजी नारी के प्रति कितना अन्याय और शोषण होता है। चाहे फिर वह सहज रूप से हो या फिर जबरदस्ती अन्याय स्त्री को ही सहना पड़ना है। पुरुष अपनी सत्ता में स्त्री को गुलाम बनाने की प्रथा को कायम रखना चाहता है। रत्न कुमार सांभरिया की अन्य कहानी 'पुरस्कार' में भी 'नीना' के प्रति कार्यालय में अन्याय होता है। पुरुष केवल नारी को भोग्या रूप में अपनाना चाहता है। 'नीना' अपनी कहानी-संग्रह को अकादमी की पत्रिका में प्रकाशित करवाना चाहती है परन्तु वहां भी उसे अन्याय को झेलना पड़ता है। अकादमी अध्यक्ष 'धौज' जी 'नीना' पर कुदृष्टि रखते हुए कहता है-"नीना जी, एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानेंगी, आप?" 'नीना' कहती है-"सर, आप पापा की उम्र के है। आपकी बात का मैं नाचीज बुरा मानूँ।"

"नीना जी, इस दिनों तुम और जवान लगने लगी हो।"[154]

कामकाजी स्त्री के प्रति पुरुष उसकी प्रगति के लिए अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है। पुरुष ही अपनी इच्छा से स्त्री के कार्यों को निर्धारित करता है। संविधान में केवल लिखित रूप में ही स्त्री-पुरुष की समानता की बातें दर्ज है। स्त्री से ऊपर दर्जे पर पुरुष विराजमान है जो अपनी इच्छाओं का गुलाम है और स्त्री को पाने के लिए भ्रष्टाचार व अन्याय को फैलाता जा रहा है। कथा साहित्य पैनल के दूसरे निर्णायक 'कोनेराम' जो अधेड़ उम्र का पुरुष है वह 'नीना' को कहता है-"नीना जी, आप नवोदित कथाकार जरूर है, लेकिन लिखती समकालीनों से श्रेष्ठ है।" तभी अन्य पुरुष 'रिजे जी' ने कहा- "तभी तो रिजल्ट शीट दोबारा बनानी पड़ी है।"

'धौज जी' 'नीना' को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए आगे कहते है-"एक बात कहूँ, नीना जी, आपको। पुरस्कार का सृजन से कोई सरोकार नहीं होता है। यह तो समीकरणों और आपसी सहमति की शीरणी भर है। मैं पिछले दो सालों से अकादमी का अध्यक्ष हूँ। संयोग से दोनों ही बार रिजल्ट शीट बदली है।" "नीना जी, आप अपनी फोटो ले आयें। आजकल में परिणाम सरस्वती सभा में रखना है।"[155] सूरजपाल चौहान की कहानी 'झूठ के दो चेहरे' में 'चम्पा' जो घर में नौकरानी के रूप में कार्य करती है। उसे घर के मालिक 'बंसल साहब के शोषण का शिकार होना पड़ता है। कामकाजी नारी केवल पुरुषों के द्वारा ही सताई जाती है हर क्षेत्र में स्त्री के किसी भी रूप के अंतर्गत पुरुष ही उससे अन्याय व शोषण करता है। चाहे वो उच्च स्तर पर कार्यरत हो या निम्न स्तर पर। घर की नौकरानी 'चम्पा' बंसल साहब की पत्नी श्रीमती 'इन्दु बंसल' को अपने प्रति हुए अन्याय की पीड़ा को व्यक्त करती हुई कहती है- "साब लोगों, मैं रोज की तरह रसोई में बर्तन साफ कर रही थी कि इन्होंने मुझे... जब मैंने मना किया तो इसने मेरी यह हालत.... साब, इसने मुझे लात और घूंसों से मारा भी है।"[156]

समाज में कार्यरत स्त्री को नौकरी में आने-जाने पर तथा कार्यस्थल पर पुरुष मानसिकता को सहन करना पड़ता है कि न जाने कितनी दुर्घटनाएं दिन-प्रतिदिन स्त्रियों के साथ घटती है विशेषकर कामकाजी स्त्रियों के साथ। मंजु वनिता की कहानी 'अजन्मा गंगाजल' में कहानी की पात्रा घर और बाहर दोनों स्थितियों में स्वयं की दशा को परखते हुए कहती है कि कामकाजी स्त्री को दोहरा अन्याय क्यों झेलना पड़ता है- "बाहर वालों को देखकर खूब हँसती-मुस्कराती है घर में घुसते ही मुँह बनाती है" हर वक्त चरित्र पर शक और लांछन। उधर दफ्तर में.... वहाँ भी पुरुषों की वही मानसिकता... कभी-कभी तो ऐसी भद्दी-भद्दी बातें जिन्हें सुनकर तन-बदन में आग लग जाती है... हर पल भीतर सुलगती इस आग में मेरी सारी तरलता को वाष्पित कर दिया है मेरी ममता बर्फ की चट्टान बन गयी है।"[157] कामकाजी स्त्री दिन-भर की मेहनत के बाद घर के काम में भी पिसती है। सारा दिन उन्हें न जाने कितनी-कितनी समस्याओं को पार करके निकलना होता है। जो केवल कामकाजी स्त्रियों की समस्या का गम्भीर रूप धारण कर चुकी है। अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'अंगरचे' की नायिका 'रेवा' जो एक कामकाजी स्त्री है वह दिन

भर की समस्याओं व अन्याय को झेलती है और अपने ही शब्दों में अन्याय को व्यक्त करती हुई कहती है-"क्या-क्या नहीं सहना पड़ता। दफ्तर में बॉस की झिड़कियाँ, चपरासियों की उड़ती कुतुर-कुतुर बकवास, रास्ते भर शोहदों की बेशर्म कोहनियाँ। ये सब सहन करने की आदत-सी पड़ चुकी है क्योंकि ये सब गोन केस बन चुके हैं। इनका कुछ नहीं सुधर सकता। मुझे तो लगता है कि मैं स्वयं गोन-केस बन चुकी हूँ।"[158]

वर्तमान समय में स्त्री की असुरक्षा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। वह कहीं भी सुरक्षित नहीं है स्त्री संबंधी कानून होने के बावजूद भी उसकी स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है- "सरकार द्वारा बनाए गए कानून अधिकांश महिलाओं पर कोई प्रभाव नहीं डालते। भारी भरकम कानूनों के होते महिलाओं में असुरक्षा की भावना बढ़ती जा रही है। वे सड़क और कार्यालय में तो असुरक्षित है ही, घर पर ही उन्हें पति के गुस्से का शिकार होना पड़ता है। पिछले दिनों हुए एक सर्वेक्षण में यह बात सामने आई थी कि दो-तिहाई महिलाएं आज भी पति की मार खाती है।"[159]

कामकाजी नारी आर्थिक व शिक्षित रूप से सशक्त होने के बावजूद भी शोषण का शिकार बनती है। समाज में कानून व्यवस्था होने के बावजूद भी नारी को किसी स्थान पर सुरक्षा नहीं मिलती है। इस बात का स्पष्टीकरण विस्तारपूर्वक इस तथ्य से स्पष्ट होता है- "स्त्रियाँ कार्यस्थलों/परिवारों/स्कूलों/अस्पतालों तक में असुरक्षित है, लड़कियों का लिंग अनुपात घटता जा रहा है; मीडिया में उनके फूहड़ एवं बाजारू चित्रण का चलन बढ़ता गया है। अपने यौन पर उनके अधिकार को व्यवहार में पुरुष-अधीन ही माना जाता है; उनके श्रम का शोषण ज्यों का त्यों कायम है; औरत के लिए कानूनों द्वारा अधिकार या संपत्ति हासिल करना आज भी हमेशा दुश्वार है; सामाजिक या राजनीतिक पहलों में उसकी भूमिका दोयम चली आ रही है। यहां तक कि मर्द-औरत के बीच बराबरी की भाषा भी नहीं बन सकी है। हम जब गालियां देते हैं तो सिर्फ महिलाओं को और वीरता का सर्वोच्च आयाम को सहज ही मर्दानगी का नाम दे देते है। हां परिवार की इज्जत की कीमत स्त्री को ही चुकानी पड़ती है।"[160]

अल्पना मिश्र की कहानी 'मुक्ति प्रसंग' में कहानी की पात्रा कामकाजी स्त्री है जिसे बस में यात्रा करके अपने महाविद्यालय पहुँचना है। कहानी की पात्रा कॉलेज में पढ़ाती है। कामकाजी स्त्री की समस्याएं उसके सामने प्रतिदिन आती है जिसे वह झेलने के लिए विवश है। वह भागते-भागते बस में चढ़ती है और स्वयं को कहती है-"इस बस के छूटने का मतलब था पन्द्रह-बीस मिनट या आधे घंटे का इंतजार और। फिलहाल वे अपनी तमाम दुनियावी इच्छाओं के एवज में भी यह नहीं चाहेंगी कि यह बस छूट जाए। बेकार में प्रिंसिपल की कुदृष्टि और विभागाध्यक्ष के व्यंग्यबाण कौन चाहेगा। एक बार बस में चढ़ जाएं और भाग्यवश या चलिए कर्मवश कह लीजिए अर्थात् छीनते-झपटते हुए यदि किनारे खिड़की के पास की सीट मिल जाये और यदि भाग्यवश उनके बगल में कोई बुजुर्ग (सभ्य भाषा में वे बुजुर्ग कह देती हैं, पर इस बुजुर्ग से उनका तात्पर्य कमीने अधेड़ों, कुंठित बुड्ढ़ों या फिर सेक्सियायें आदमियों से होता है) बैठ न पाये या फिर कोई दुष्ट जवान बैठते-बैठते रह जाये, तो इसे वे कर्म से इतर ही मानेंगी। कोई डरता-सा बालक या कोई शान्त-सी स्त्री बैठे तो कम से कम वे कुछ देर के लिए नैतिक संसार से इतर उस विश्वासमय भावलोक की यात्रा कर सकेंगी, जिसे वे थोड़ी देर के लिए 'मुक्ति की सांस' लेना कहती है।"[161] समाज में कामकाजी स्त्रियों को न जाने कितनी भूमिकाएं निभानी पड़ती है। फिर भी घर व परिवार में स्त्री सहयोग न पाकर निराश हो जाती है। 'अगरचे' कहानी की 'रेवा' कामकाजी स्त्री हो कर भी अपनी इच्छा से कार्य नहीं कर सकती है। परिवार का शिकंजा उस पर कसा हुआ है। 'रेवा' रिक्शा में बैठकर घर जाती है वह तनावपूर्ण स्थिति में स्वयं को रिक्शा वाले की स्थिति से जोड़ कर देखती है और सोचती है-"हड्डियों का ढांचा दम लगाकर रिक्शा खींचता है। बीड़ी पीने वाले रिक्शे वालों में जान ही कितनी होती है? ऊपर से सवारी का बोझ भी खींचते हैं। इससे अच्छा तो सरकार इन्हें बैन ही कर दे। भला यह क्या इंसानियत कि एक आदमी दूसरे आदमी का बोझ खींचे। यह कैसी लाचारी? मैं भी तो मजबूर हूँ, गरीब हूँ तभी अपना कमाने के बावजूद अपने रुपये अपनी मर्जी से खर्च नहीं कर सकती। मैं भी तो बोझ खींच रही हूँ परिवार का।"[162]

नीलम गोयल ने आधुनिक समाज की स्त्री, जो कामकाजी है उसकी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहती है- "आधुनिक समाज में, जहां नारी के अस्तित्व को मान्यता मिली है, उसे शिक्षा प्राप्त करने में पूर्ण स्वतंत्रता मिली है, नौकरी करके आत्मनिर्भर बनने की पुरुष बराबर छूट मिली है और पुरुषों के समान सभी संवैधानिक व सामाजिक अधिकार मिले हैं, वहां नारी अभी भी पुरुष की शिकार है तथा उसके स्वामित्व भार से आक्रान्त होने के कारण विक्षुब्ध है।"[163]

समाज में स्त्री अन्याय के तहत उसे सामाजिक स्तर पर समानता व न्याय प्रदान नहीं किया जाता है। परिवार व बाहर स्त्री जीवन में अल्प मात्रा की सांत्वना भी उसके हिस्से में नहीं आती है। "हमारी सामाजिक परंपराएं भी कामकाजी महिलाओं की राह में किसी रोड़े से कम नहीं है। पुरुष जब काम करके वापस घर लौटता है तो उस पर घर की कोई जिम्मेदारी नहीं होती है, उसे घर की व्यवस्था नहीं संभालनी पड़ती है लेकिन जब एक श्रमिक महिला पूरे दिन हाड़-तोड़ मेहनत करने के बाद घर लौटती है तो उसे अपनी घरेलू भूमिकाओं को भी निभाना पड़ता है। घर में उसे पत्नी, मां और बहू के कर्त्तव्य पूरी संजीदगी से निभाने पड़ते है। श्रमिक महिलाएं अपनी कामकाजी और घरेलू भूमिकाओं का निर्वाह करते-करते कभी-कभी टूटन के कगार तक भी पहुंच जाती है। परंपरागत पुरुष-प्रधान माहौल में उसके लिए कोई संवेदना नजर नहीं आती।"[164]

समाज में नौकरी करने के लिए स्त्री को अन्याय का सामना करना पड़ता है परंतु नौकरी प्राप्त करने के लिए भी स्त्री को तरह-तरह अन्याय की बातें सुननी पड़ती है कि समाज में स्त्री को नौकरी करने की क्या जरूरत है। वह तो घर पर रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करें। अल्पना मिश्र की कहानी 'तमाशा' में कहानी का पात्रा के अलावा और कोई लड़कियों का वाइवा होना होता है। जिसमें दूर-दूर से आई लड़कियां किसी-न-किसी समस्या से घिरी है परन्तु वाइवा होने का नाम ही नहीं ले रहा। चपड़ासी से बार-बार पूछती है। अन्दर बैठे इंटरव्यू लेने के लिए स्त्री की दशा का व्यंग्य करते हुए कहते है-"औरत होने का नाजायज फायदा लेती हैं ये लोग। हाँ, नहीं तो। तमाशा बना रखा है। हाँ, कहिए इन्तजार करे। यह भी तो इंटरव्यू है। किसने मजबूर किया है कि आएँ पढ़ने? क्या जरूरत है चौका-चूल्हा छोड़कर आने की? घर का सत्यानाश अलग करती हैं ये लोग?"[165] अल्पना मिश्र

की अन्य कहानी 'लिस्ट से गायब' में भी कहानी की पात्रा को नौकरी प्रदान नहीं की जाती है। क्योंकि पति उच्च पद पर होने के कारण उसके साथ अन्याय किया जाता है लेकिन उसका पति उससे अलग है तलाक लेना चाहता है। इंटरव्यू देते वक्त कहानी की पात्रा के साथ नौकरी में अन्याय किया जाता है और पूछा जाता है-"आपके पति अधिकारी है?"

"जी हाँ।"

"तो आपको नौकरी करने की क्या जरूरत है?"[166]

वह बताती है कि शुरू से उसका सपना है कि वह समाज के कुछ करें परन्तु उसे अन्याय ही मिला है। इंटरव्यू बोर्ड में बैठे व्यक्ति उसे कहते है-"मैडम, बाहर मजबूर लाचार और दुखी लोगों की लम्बी लाइन है। आपको नहीं लगता कि उन्हें कहीं ज्यादा जरूरत है नौकरी की, एक सपने की बजाय?"[167]

अल्पना मिश्र की अन्य कहानी 'इस जहाँ में हम' की नायिका बैंक में कार्यरत है। वह अपना तबादला करवाना चाहती है। लेकिन नौकरी के तहत उसे तरह-तरह के अन्याय झेलने पड़ते है। कार्यालय के कर्मचारी 'नौटियाल' जी कहते है कि ट्रेनिंग के बाद तो वह कम्प्यूटर लिटरेट बन जाएंगी। प्रमोशन और ट्रांसफर एक साथ हो जाएगा। 'नौटियाल जी' कहानी की पात्रा की समस्या को न समझते हुए तरह-तरह की सुझाव प्रदान करते हुए कहते है- "आप तो महिला है, आपको काहे की चिन्ता? सरकार ने महिलाओं को विशेष छुट्टी दी है। एक दो मेडिकल सर्टिफिकेट लगा दीजिए एबार्शन का। सौ रुपये में बन जाता है। जाइए, सवा महीने की छुट्टी ले के मौज करिए।"

"प्रमोशन चाहिए तो भई ट्रांसफर तो झेलना होगा।"[168]

समाज में कामकाजी नारी को पुरुषों के अधीन रहकर शारीरिक व मानसिक यातनाओं का सामना करना पड़ता है। उर्मिला शिरीष की कहानी 'उसका अपना रास्ता' में कहानी की 'वृन्दा' अपने दोस्त 'पवन' के साथ नौकरी पाने की चाह में दिल्ली चली जाती है। 'वृन्दा' का दोस्त उसके साथ अन्याय करता है कि अब 'वृन्दा' 'पवन' को रुपये कमा कर नहीं देती है तो 'पवन' 'वृन्दा' को अपमानित करता हुआ कहता है-"क्या है तुममें? तुम्हारी जरा-सी प्रतिभा और जरा-सी खूबसूरती तुम्हारें कस्बे के लिए काफी होगी। जितना बड़ा शहर, उतना बड़ा

कैनवास। फैला सकती हो स्वयं को इस बड़े कैनवास पर?"[169] 'पवन' 'वृन्दा' को नौकरी दिलवाने के लिए दिल्ली लाता है और उसके साथ यौन शोषण करता है और छोड़ कर मुम्बई आ जाता है। 'वृन्दा' अकेली परेशान होकर उसे खोजती हुई मुम्बई पहुँच जाती है और उसे बताती है कि वह उसके बच्चे की माँ बनने वाली है और वह उससे शादी करना चाहती है परंतु 'पवन' 'वृन्दा' के साथ विवाह न करके फिर से अन्याय करता है और उसे स्पष्ट कह देता है- "मेरे पास इन बातों के लिए वक्त नहीं होता है। मैं तो शादी के बाद भी बच्चा पैदा करने के लिए दस बार सोचूंगा। यह तुम्हारी प्रॉब्लम है। मिडिल क्लास मेण्टेलिटी की कस्बाई लड़कियाँ प्रेम, स्थायित्व, मातृत्व आदि की भावनाओं में बह जाती है और साथी को भी फँसाने की कोशिश करती हैं। खुद का ठिकाना नहीं, बच्चा और पैदा कर लो। इस उम्र में सेक्स एन्जॉय करने के लिए होता है या बच्चा पैदा करने के लिए? अब आँसू बहाओ या माँ बनो या आबॉर्शन कराओ, मेरे पास इस बारे में बात करने के लिए कभी मत आना।"[170]

समाज में कामकाजी नारी के प्रति अन्याय बढ़ता जा रहा है। नौकरी करने के दौरान उसे अनेक समस्याओं का सामना पड़ता है जिसका परिणाम केवल अन्याय ही है। इक्कीसवीं सदी में कामकाजी नारी की दशा अत्यंत चिन्ताजनक प्रतीत होती है। सुप्रिया पाठक 'सैद्धांतिक एवं साहित्यिक स्त्री-विमर्श के द्वंद्व' में स्त्री की दशा स्पष्ट करती हुई कहती है- "औरत पर आर्थिक, सामाजिक यौन उत्पीड़न अपेक्षतया अधिक गहरे, व्यापक, निरंकुश और संगठित रूप से कायम है। स्त्री आंदोलनों को इन समस्त चुनौतियों से लड़कर ही अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना होगा।"[171]

4.1.4 घुटन व प्रताड़ना :

समाज में स्त्रियों का उत्पीड़न होना आज भी समाज के लिए सोचनीय विषय है। स्त्रियों के पक्ष में सदैव असमानता ही आई है। वर्तमान समय में भी स्त्री परिवार व समाज से प्रताड़ित होकर घुटन भर की जिन्दगी जीने के लिए विवश है। समाज व परिवार में आज भी उनके साथ अमानवीय व्यवहार, अत्याचार, क्रूर व्यवहार से प्रताड़ित की जाती है। कानून व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों के अधिकार व न्याय मिलना कहीं न कहीं स्त्रियों से बहुत दूर कागजों में दफन है। इन्दु बाली की कहानी 'वह लेखिका बन गई' में 'गगन' अपनी पत्नी 'भूमि' को दोष लगाता है

कि उसने मुझे धोखा दिया है 'भूमि' मुझे बिना बताए ही लेखिका बन गई है। जिससे 'गगन' को यह बात सहन नहीं होती है तो वह अपनी 'भूमि' से ठीक व्यवहार न करके उसे प्रताड़ित करता है। जब 'भूमि' उदास होती है तो 'गगन' उसे कहता है-'क्या मनहूस शक्ल बना रखी है।'

'लगता है किसी का मातम मना रही हो।'

'भूमि' कहती है कि तुम समझ नहीं पाओगे तब 'गगन' उसे कहता है-'यह सब समझने की अक्ल तो भगवान ने शायद तुम्हें ही दे दी है।"[172] अल्पना मिश्र की कहानी 'इस जहाँ में हम' में 'मिस्टर बगड़वाल' अपनी पत्नी को मोबाइल फोन लेने से नाराज हो जाता है। उसकी पत्नी बैंक में कार्यरत है। लेकिन पति की इच्छाओं से बाहर नहीं है परंतु घर की सुविधा और बच्चों का हाल जानने और दफ्तर से सम्बन्धित बातों के लिए फोन खरीद लिया जाता है तो 'मिस्टर बगड़वाल' अपनी पत्नी को प्रताड़ित करता हुआ कहता है-"क्या बेवकूफी है। इस खर्चे की क्या जरूरत थी?"

"कोई दिक्कत होती तो बच्चे नौटियाल जी, वर्मा जी, सती जी, में से किसी को फोन करते ही। तुम्हें इन चक्करों में पड़ने की क्या जरूरत थी?"

"अच्छा, खरीद ही लिया है तो इधर-उधर नम्बर मत बाँटना। बड़ी पर्सनल चीज होती है मोबाइल। कम फोन करना।"[173] 'मिस्टर बगड़वाल' की पत्नी डर-डर कर अपने पास फोन को रखती है क्योंकि फोन को लेकर उसे प्रताड़ित किया जाता है और उसका पति 'मिस्टर बगड़वाल' फोन चेक करता हुआ सख्त आवाज में अपनी पत्नी से पूछता है-"ये फोन बुक में इतने नम्बर किसके-किसके भर लिया है?"

वह कहती है-"ऑफिसवालों के हैं।"

"हूँ।"

"अपनी अकल लगाये बिना नहीं रह सकती। मना किया था इधर-उधर नम्बर न बाँटना। पर तुम्हें फैशन सूझ रहा है। फँसोगी एक दिन।"[174]

कहानी की पात्रा अपने पति के डर से घुटन महसूस करती है कि फोन को लेकर उसका पति उसे अपमानित करता है। जब फोन आता है तो उसका पति खुद ही फोन उठाता है। फिर फोन बजता है तो उसकी पत्नी फोन उठाने के लिए आती

है तो उसका पति कहता है-"साला रिंग टोन है कि लगता है कान में कोई लाल मिर्च डाल रहा हो।" फिर अपनी पत्नी से पूछता है- "कौन था?"

"नौटियाल जी का था।"

"किसलिए कर रहे थे?"

"बैंक में प्रमोशन, ट्रांसफर वगैरह की लिस्ट आनी थी, वही बता रहे थे।"

थोड़ी देर बाद बच्चों के माध्यम से वह अपनी पत्नी को गुस्से से प्रताड़ित करता हुआ कहता है-"मम्मी ने आज मोबाइल लिया है, कल कार ले लेंगी, फिर तो स्टैंडर्ड इतना हाई हो जाएगा कि ये घर भी छोटा लगेगा।" कुछ देर फिर मोबाइल बजता है तो मिस्टर बगड़वाल अपनी पत्नी को सुनाते हुए कहते है-"किसी यार का होगा।"[175]

कविता की कहानी 'बिन्दी री बिन्दी' में 'राहुल' मुस्लिम धर्म की लड़की 'आयशा' से प्रेम-विवाह करता है। जब 'आयशा' एक दिन सुबह नमाज पढ़ने लगती है तो 'राहुल' को बहुत गुस्सा आता है। 'राहुल' अपनी पत्नी 'आयशा' को धर्म के आधार पर प्रताड़ित व घुटन भरी जिन्दगी जीने पर विवश कर देता है और 'आयशा' को प्रताड़ित करता हुआ कहता है-"अब यह नयी नौटंकी क्या शुरू हो गयी? मैं कहता हूँ बन्द करो यह सब कुछ। बच्ची रो-रोकर जान दे रही है और इनका नया शौक चर्राया है। आगे से नहीं देखना चाहता हूँ मैं अपने घर में यह सब कुछ।"[176] समाज में पुरुष स्त्री पर अपना अधिकार जमाये रखता है। स्त्री को अपनी इच्छा के अनुसार चलाना चाहता है परंतु वह कानून द्वारा स्त्रियों के अधिकारों को मानने के लिए तैयार नहीं है जो सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए स्त्री को दिये गए है क्योंकि परंपरागत समाज में पुरुष ही मुखिया व पुरुष ही निर्णय लेने का अधिकारी है स्त्री केवल उनके लिए भोग्या, शोषण व प्रताड़ित करने के लिए बनी हुई है। अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'सुबह का भूला सहमा-सा घर आया' कहानी में 'रंजन' अपनी पत्नी 'मंदिरा' को अपनी इच्छा से किसी भी समय प्रताड़ित कर सकता है 'रंजन' सुबह-सुबह अपनी बीवी पर चिल्लाता हुआ कहता है-"अरे मंदिरा, सुना नहीं तूने?"

'मंदिरा' कहती है-"जी आ.... ई। ऽऽऽ"

"कहिए....?"

"कितनी बार कहा है तुमसे मेरे कपड़े चैक कर लिया कर पर तुझे आराम करने से फुर्सत तब ना ! देख, ये जेब फटी हुई है। अब मैं कौन-सी टी-शर्ट पहनूँ?" गुस्से से 'रंजन' टी-शर्ट उतार कर 'मंदिरा' के मुंह पर दे मारता है और आगे कहता है-"हुँ...ह...। अभी ठीक कर देगी महारानी। मुझे पहले ही देर हो रही है। चल जाकर दूसरी शर्ट ले आ। सारा मूड खराब कर दिया।"[177] पति 'रंजन' द्वारा प्रताड़ित 'मंदिरा' चुपचाप सहन करती रहती है परन्तु 'रंजन' उसे अपमानित करता हुआ अपने बच्चों के बारे में पूछता है- "वो पिल्ले कहाँ है?"

"जी ! वो अभी सो... न.ही.प.ढ़..न.ही कम... कमरे में हैं।"

"बड़ा सिर चढ़ा रखा है तूने उन्हें। मैं घर नहीं रहता इसका अर्थ यह नहीं कि तू उन्हें छूट दे। थोड़ा पढ़ाया भी कर उन्हें। अब खड़ी-खड़ी मेरा मुँह क्या देख रही है, शर्ट क्या तेरा बाप लाएगा?"[178] समाज में स्त्री परिवार में रहकर घुटन भरी जिन्दगी जीने को विवश है। संतराम आर्य की कहानी 'कब मिलेगा आशियाँ' में भी स्त्री पीड़ित दशा को व्यक्त किया है जिसमें 'शोभा' का पति उसे बुरी तरह प्रताड़ित व अत्याचार करता है और 'शोभा' को अपमानित करता हुआ गालियां निकालता है। 'शोभा' का पति शराब पी कर शाम को घर आता है 'शोभा' बीमार होती है परंतु फिर भी उसका पति उसे नीचे घसीटता हुआ कहता है- "महारानी बुखार का बहाना बनाकर आराम फरमा रही है। चल उठ खाना लेकर आ मेरे लिए। खुद तो हराम का खा लेती है मेरे लिए बच्चों सिखा दिया। उठती है कि नहीं? चल जा किसी अपने यार के घर से ले आ।"[179]

अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'जीवन-दान' में 'धनवंती' अपने पति से बहुत परेशान है। वह शराबी और बेरोजगार है। 'धनवंती' की पांच लड़कियां और एक लड़का 'प्रिंस' है। 'धनवंती' को उसका पति पीड़ित करता हुआ कहता-"मैं नौकरी छोड़ आया हूँ। अब मुझसे नहीं होता काम। आज से मैं आराम करूँगा।" 'धनवंती' को यकीन नहीं आता है वह गुस्से से आक्रोश में आकर अपने पति को कहती है- "हाय ! हाय ! नामुराद ! तू नौकरी छोड़ आया। कैसे होगा घर का गुजारा। पहले क्या कम गरीबी थी जो तू और बढ़ा रहा है। बेटियाँ आती हैं, कुछ लेकर ही जाती है। भुक्कखड़ के पल्ले बांध दिया मेरे बाप ने। हाय ! अब इस घर का क्या होगा?"[180] 'धनवंती' का पति 'सुरसतिया' उसी को अपमानित करता हुआ आगे

कहता है- "उस नालायक से मेरी तुलना करती है। अपने खसम को बेटे से मिलाती है चो-प्-प। एक थपेड़ा मारकर जबड़ा बाहर निकाल दूँगा। घना तिरया चरितर न दिखा मुझे। खूब जानूँ तेरे जैसी छिनालों को। मरद घर में बैठ गया तो तेरी अय्याशी पर पहरा लगेगा तभी चीख रही है। हराम की जनी।"[181] इसी तरह का अत्याचार व प्रताड़ना 'मृदुला गर्ग' की कहानी 'तीन किलो की छोरी' में भी मिलता है। कहानी में 'लल्लीबेन' का पति उसे प्रताड़ित करता है और दूध पहुँचाने का कार्य उससे करवाता है और उसे प्रताड़ित करता हुआ कहता है- "चुप चुड़ैल। छोड़ नौटंकी, उठ और काम पर लग। दूध पहुँचाने कौन जाएगा, तेरा बाप।"

"चोप हरामजादी।"

"छोड़ उसे, दूध पहुँचाकर आ"[182]

समाज में स्त्री पुरुषों के अनुसार घर परिवार को चलाती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार स्त्री ही पुरुषों के लिए व्रत रखती है। कभी पुत्र कामना के लिए, कभी पति की लम्बी आयु के लिए, भाई की लम्बी आयु का त्यौहार, अच्छा वर प्राप्ति के लिए केवल पुरुषों लिए ही व्रत व त्यौहार मनाये जाते है। नूर जहीर की कहानी 'खुद की पहचान' में 'शर्मिला' अपने पति की लम्बी आयु के लिए करवा चौथ का व्रत रखती है परंतु उसका पति 'भास्कर' सदैव उसे प्रताड़ित व अपमानित करता है। जब शाम को 'शर्मिला' का पति घर आता है तो 'शर्मिला' बहुत खुश होती है परन्तु पल भर की खुशी उसकी मातम में बदल जाती है 'शर्मिला' को खुश देखकर उसका पति 'भास्कर' उसे रोब से कहता है-"देखो यह तेवर कहीं और जाकर दिखाना। मुझ पर इनका कोई असर नहीं होने वाला। नाश्ता ला जल्दी।"

'शर्मिला' चाय और नाश्ता रखकर जाती है तो उसका पति आक्रोश में आकर फिर कहता है-"मेरा दिया खा रही है और मुझे ऐसे दे रही है जैसे कोई गली के कुत्ते को देता है। ठीक से नहीं रख सकती या मै ठीक से रखूँ। मैं क्या नौकर हूँ इस घर का?"

'शर्मिला' कहती है-"कैसी बातें करते हो जी, मैंने तो ऐसा कभी नहीं सोचा।"

"जबान चलाती है? एक तो सुबह-शाम अपना सड़ा मुँह दिखाती है, ऊपर से जुबान चलाती है।"

"बदमाश, कुलक्षणी। कमीनी, रण्डी। चाहती है कि मैं जल्दी मरूँ ताकि तू मौज कर सके, गुलछरे उड़ा सके अपने यार के साथ। तभी तूने करवाचौथ का व्रत नहीं रखा न? अगले जन्म में शुरू से ही उसका साथ चाहती है। डायन कहीं की, पति का खाकर दूसरा खसम करेगी वेश्या कहीं की।"[183]

समाज में आर्थिक स्तर पर निर्भर स्त्री भी पति के तानों व अत्याचारों से प्रताड़ित है। आर्थिक-निर्भर होने के बावजूद भी वह मुक्त जीवन नहीं जी सकती है। अमरीक सिंह 'दीप' की कहानी 'मम्मी, ये पापा है' में 'दिलीप' का पति 'जसवंत सिंह' जो बेरोजगार, निकक्मा, निठ्ठला व शराबी प्रवृत्ति का व्यक्ति है वह अपनी पत्नी के रुपयों पर अधिकार जमा कर उस पर अत्याचार करता है और अपनी पत्नी को घुट-घुटकर जीने के लिए विवश व प्रताड़ित करता रहता है। 'दिलीप' अपनी नौकरी के रुपयों में से घर बनाती है और बच्चों का पालन-पोषण करती है और 'जसवंत' आ कर अपनी पत्नी को गुस्से से प्रताड़ित करते हुए कहता है- "भौनचौ... भुल गई, मैं तेरा घरवाला हूँ और तू मेरी जनानी है। गुरु महाराज की बीड़ के चौगिर्द लावां फेरे लेकर मैंने तेरा हाथ पकड़ा था। सदा अंग-संग रहने की सौहं खाई थी। तू यहां इस शहर में मौज़ा माने, गुलछर्रे उड़ाए और मैं वहां दिल्ली में मंगतों जैसी जिन्दगी गुजारूं। क्या यही है दु:ख-सुख में अंग-संग रहना?"[184]

'जसवंत' की बातें सुनकर 'दिलीप' कहती है-"यहा रहकर क्या करोगे तुम?

"क्यों? क्या जरूरत है कुछ करने की? नौकरी तू कर रही है। अच्छा-खासा साइड बिजनेस है तेरा। मेरा ख्याल है, महीने में तीस-चालीस हजार रुपये तो तू पीट ही लेती होगी। वो किसी ने ठीक ही कहा है- अल्ला दे जब खाने को तो कौन भडुवा जाए कमाने को।" 'दिलीप' अपनी पति की बातें सुन कर बुरी तरह बिलख उठती है और अपने पति को कहती है- "आखिर क्या चाहते हो तुम? क्यों फिर से मेरी जिंदगी को नरक कर देना चाहते हो?"[185]

वर्तमान समाज में नारी को घुटन व प्रताड़ना द्वारा भी अन्याय का सामना करना पड़ता है। इक्कीसवीं सदी से स्त्री अपने अस्तित्व और अस्मिता के संघर्ष के

दौर से गुजरते हुए समाज में पुरुष द्वारा प्रताड़ित की जाती है। रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'राईट टाईम' में एक दंपत्ति को सीट न मिलने से सीट पर बैठी स्त्री पर लांछन लगाते हुए उसे प्रताड़ित करते हुए कहते है-"आ बैठते है, घर की बैलगाड़ी हो, जैसे।"

"अरी, बोलती क्यों नहीं है, मुँह में दही जमा है, तेरे?"

पुरुष उस स्त्री पर व्यंग्य करता हुआ कहता है- "टिकट क्यों लेकर बैठेगी यह? ऐसी वालियों को खूब जानता हूँ मैं। टिकटी और जी०आर०पी० वालों से सांठ-गांठ होती है, इनकी।"[186] समाज में 'स्त्री' पुरुषों द्वारा ही प्रताड़ित की जाती है चाहे वो पुरुष उसका पति हो, पिता हो, पुत्र हो, भाई हो या फिर कोई अन्य पुरुष हो। स्त्री को अन्याय व अत्याचार का शिकार बनना पड़ता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'बिगड़ैल बच्चे' में 'निशा' अपने मायके आने के लिए तरस रही है ससुराल में उसे कोई उसके मायके छोड़ने के लिए नहीं जाता है। विवाह से पहले से भी 'निशा' को स्वतंत्रता नहीं मिलती है क्योंकि उसके माता-पिता ने उसे नौकरी के लिए बाहर नहीं भेजा। तब भी 'निशा' घुटन भरी जिन्दगी से परेशान होती है। 'निशा' अपनी मम्मी को फोन करके कहती है-'मम्मी, मुझे सास ने कह दिया है, जा हो आ मायके, तुम कल ही भैया को भेज दो।'

उसकी मम्मी कहती है-"भैया कैसा आएगा निशि, उसके एक्जाम हैं।"

"तो मां..."

"तू खुद चली आ ना। जयपुर से तो कई सीधी रेल है दिल्ली की। करा ले रिजर्वेशन।"

"मम्मी तुम तो जानती हो, दो छोटी बच्चियों के साथ ये अकेले नहीं भेजेंगे मुझे। इन्हें फुर्सत नहीं फिर बताओ न... मैं भी कैसे आ जाऊँ, कितनी दिक्कत होगी दोनों तो गोदी चढ़ती है। हाय, मम्मी कितनी मुश्किल से सास का मुँह सीधा हुआ है मेरे मायके जाने के नाम पर।"

"अच्छा-अच्छा... मैं ही..."

"कल ही चल दो न माँ। कितना तरस रही हूँ मैं।"[187]

'गृहस्थी का सुख' कहानी में 'शिव सहाय' का दूसरा विवाह कर दिया जाता है क्योंकि उसकी पहली पत्नी ने वंश परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए वारिस को

जन्म नहीं दिया तो उसकी सास उसे हमेशा प्रताड़ित करती है और उसे घर का कोई काम नहीं करने देती सिर्फ तानें देकर कोसती है जिससे 'शिवसहाय' की पहली पत्नी की जिन्दगी घुटन भरी हो जाती है। उसकी सास प्रताड़ित करती हुई कहती है-"तुझे अपने बाप-भाइयों की कसम, जो किसी को हाथ लगावे !"

"आने दे शिब्बू को, तेरी चुटिया न रगवाई, तो मेरा नाम नहीं।"

"अरी कुलच्छनी, भगवान से डर। सवेरे-सवेरे जो तू रोज रार मचाती है, यह ठीक नहीं। तभी तो तेरी छोटी बहू आए दिन पड़ी रहती है।"[188]

'शिवसहाय' की माँ अपने बेटे को ये बातें सुनाती हुई अपनी बहू को प्रताड़ित कर रही होती है तो 'शिवसहाय' को अपनी पहली पत्नी पर गुस्सा आता है और वह भी उसे प्रताड़ित करता है-"देखता हूँ तू इस घर को मिट्टी में मिलाकर छोड़ेगी। तुझे कौन दु:ख मिल रहा है जो दिन-रात कलह मचाए रहती है।"[189] अपनी सास और पति की बातें सुनकर वह ओर ज्यादा तड़प उठती है और कहती है-"तुम मुझे मार डालो। आज मैं मरके रहूँगी" उसकी सास फिर उसे प्रताड़ित करती हुई अपने बेटे 'रामसहाय' को कहती है- "देख लिए इसके लच्छन। तुमने ही सिर चढाई है। तभी इतना गुमान है। इसने हम दोनों सास-बहू को एड़ी-तले दबा रखा है।"[190]

सन्तोष गोयल की कहानी 'इंतजार करो वकत का' में भी इसी प्रकार सास द्वारा अपनी बहू प्रताड़ित की जाती है। कहानी का पात्रा पुत्र जन्म न देकर उसकी सास उसे घुट-घुट कर जीने पर विवश करने उसके साथ अन्याय करती है और अपनी बहू से कहती है -

"निपूति... जा कै नदी-नाले में डूब न जावै खुदै... मरे तो पीछे छूटे... छाती पै बैट्ठी रहैवे मूंग दलती?"

"इब्ब मैं कै करूँ? चल... मैं चलूं साथ मैं... नदी किनारे... खुदै ना जान ली जावै किसी से... मैं दे दूंगी धक्का नदी-जोहड़ मां... ले लूंगी ये पाप अपने सिर...।"[191] ममता कालिया की कहानी 'बोलने वाली औरत' में भी 'दीपशिखा' अपनी सास के तानों से प्रताड़ित हो कर घुटन भरी जिन्दगी जीने को विवश है। घर में 'दीपशिखा' का बड़ा बेटा झूठे बर्तन उठाने से मना कर देता है और 'दीपशिखा' द्वारा डांटने पर पलट कर उसे ही मार देता है तो ऐसे में उसकी सास

'दीपशिखा' को ही गलती निकाल कर उसे प्रताड़ित करती हुई कहती है- "हमेशा गलत बात बोलती हो, इसी से दूसरे का खून खौलता है। शुरू से जैसे तूने ट्रेनिंग दी, वैसा वह बना है। ये तो बचपन से सिखाने वाली बातें हैं। फिर तू बर्तन उठा देती तो क्या घिस जाता।" 'कपिल' भी अपनी मां की बातें सुनकर 'दीपशिखा' को ही प्रताड़ित करता हुआ कहता है-"पहले सिर्फ मुझे सताती थीं, अब बच्चों का भी शिकार कर रही हो।"[192]

समाज और परिवार में स्त्रियों को मानसिक उत्पीड़न से जीने के लिए विवश किया जाता है। घरों व परिवारों के अन्दर सहन कर रही स्त्रियों के लिए मानसिक उत्पीड़न व प्रताड़ना बहुत घातक सिद्ध होता है जिसका प्रभाव स्त्री के सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता है। सूर्यबाला की कहानी 'गौरा-गुनवन्ती' में 'गौरा' को उसकी ताई के घर रहना पड़ता है जिससे वहां उसकी भाभी शिक्षा के लिए उसे प्रताड़ित करती है और कॉलेज भेजने से मना कर देती है। जिससे 'गौरा' उन सब की बातें मानने के लिए विवश है। 'गौरा' की मां की मृत्यु हो जाने के बाद उसे अपने ताई के घर रह कर घुटन भरी जिन्दगी जीती है। 'गौरा' को कभी नए कपड़े पहनने को नहीं मिलते है और घर पर रहकर ही कॉलेज की पढ़ाई करने का फैसला लेती है और 'गौरा' अपनी मन की बात को व्यक्त करती हुई कहती-"याद नहीं, इसके कितने दिनों बाद मैंने भाभी से कहकर नाम कटवा लिया था, भाभी ने ना-नू भी की पर मैंने समझा दिया- कॉलेज में पढ़ाई कुछ नहीं होती, बस बता देते है फलाँ-फलाँ किताब पढ़ लो, सो मैं घर में ही पढ़ लिया करूँगी। नाम कटा लेने के बाद से भाभी मुझसे काफी खुश हो गयी थी।"[193]

कमलेश कुमारी रवि की कहानी 'साहसी लड़की' में 'कमली' को तो स्वयं उसके माता-पिता ही शिक्षा से वंचित रखना चाहते है 'कमली' को शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से मना करते है और उसे बार-बार प्रताड़ित करते है विरोध करने पर भी 'कमली' को केवल घुटन व प्रताड़ना ही प्राप्त होती है। 'कमली' अपनी माँ को शिक्षा प्राप्त करने के लिए निवेदन करती हुई कहती है-"मां मुझे कुछ नहीं चाहिए, सिर्फ पढ़ने दीजिए, मैं स्वयं कमाकर खा लूंगी।" 'कमली' अपने मां-बाप के सामने फिर से शिक्षा के लिए आग्रह करती हुई कहती है- 'चाहे आप मुझसे कुछ भी करायें लेकिन मुझे पढ़ने दीजिये मैं कुछ करना चाहती हूँ, खाना

चाहती हूँ, खेलना चाहती हूँ, जीना चाहती हूँ और हंसाना भी चाहती हूँ। मैं घुट-घुटकर मरूंगी नहीं, दूसरों को भी जीना सिखाऊँगी।"[194]

समाज व परिवार में स्त्री-पुरुष के भेदभाव के अनुसार स्त्री की ही भावनाओं का दमन किया जाता है। स्त्री को अपेक्षित दृष्टि से तनावग्रस्त जीवन जीने के लिए विवश किया जाता है। जिससे स्त्री की जिंदगी घुटन भरी हो जाती है। कविता की कहानी 'बिन्दी री बिन्दी' की 'आयशा' 'राहुल' से प्रेम-विवाह करती है। हिंदू धर्म का राहुल धर्मगत भेदभाव रखते हुए 'आयशा' को घुटन से रहने के लिए विवश करता है। 'आयशा' मानसिक उत्पीड़न के चलते 'राहुल' से कहती है- "प्लीज राहुल, तुम तो मुझे मेरे नाम से पुकारो। दुनिया के हर इनसान की तरह मुझे भी अपने नाम से बहुत प्यार है। राहुल, अगर प्यार जुर्म था तो फिर उसकी सजा मुझे ही क्यों। तुम लोग खुले दिल से मुझे अपना नहीं सके और मेरे अपनों से मेरा कोई ताल्लुक बना रहे, तुम्हें यह भाया ही नहीं।"[195]

अवधेश प्रीत की कहानी 'तीसरी औरत' में कहानी की पात्रा अपनी घुटन भरी जिन्दगी को व्यक्त करती है कि हवेली में रहकर विवाह के बाद जिन्दगी घुटन भरी रही है। हवेली में तीन औरतें रहती है। पहली औरत तीसरी औरत को अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहती है-"हाँ। मैंने एक उम्र गुजारी है इस हवेली में।"

"इसी तरह घुटते हुए?"

"नहीं, घुटन से लड़ते हुए।"

तीसरी औरत सवाल करती हुई कहती है-"तो इस हवेली में हर औरत लड़ रही है? पीढ़ियों से लड़ रही है? फिर भी मुक्ति नहीं? क्या फर्क है उनमें जो इसे हवेली से मुक्ति के लिए बाहर लड़ रहे है? क्या फर्क है इनमें जो इस हवेली से मुक्ति के लिए भीतर लड़ रही हैं?"[196] अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'अगर तू साथ होता' में 'रानी' पहले अपने पति द्वारा प्रताड़ित की जाती थी जिसकी मृत्यु हो चुकी है और अपने शराबी पति के स्थान पर कार्यालय में चपड़ासी की नौकरी कर रही है। लेकिन 'रानी' के मायके से मां की मृत्यु के बाद उसके भाई भी उसका साथ नहीं देते है जिससे अन्दर ही अन्दर 'रानी' टूट जाती है। 'रानी' सात भाईयों में अकेली बहन है। भाईयों द्वारा प्रताड़ित 'रानी' कार्यालय के मैडम को अपना दु:ख

प्रकट करते हुए कहती है-"पता नहीं मुझसे क्या खता हुई कि मेरे भाई मेरे पास नहीं आते। मैं भी कभी उनसे कुछ नहीं मांगती पर फिर भी मेरे मन में इक हूक सी उठती है कि क्या खून खून के लिए कभी नहीं रोता? क्या एक ही माँ के जाए एक-दूसरे का दर्द महसूस नहीं करते? हम सब एक साथ पले-बढ़े, माँ-बाप की झाड़ खाई, बचपन में शरारतें साथ-साथ की। फिर आखिर ऐसा क्या हो गया जो अब उनका दिल पत्थर का हो गया। काश मेरी एक बहन होती। कम-से-कम हम बहनें तो सुख-दुख बाँटती।"[197]

समाज में पुरुष स्त्री को मानसिक व शारीरिक दोनों रूपों से पीड़ित करता है। भले हो भी स्त्री के लिए कानून ने अधिकार प्रदान किये हो परन्तु स्त्री उन अधिकारों को अर्जित करने में असमर्थ है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र की कहानी 'स्वर्ण नदी रेत की' में 'पुनिता' 'दिगन्त' से प्रेम विवाह करती है। विवाह के पश्चात् 'पुनिता' के प्रसव काल के दौरान 'दिगन्त' उन्नीस वर्षीय नौकरानी 'श्यामा' को अपने घर ले कर आता है और अपनी नौकरानी से दुष्कर्म करता है। 'पुनिता' जब अपने पति और 'श्यामा' को आपत्तिजनक स्थिति में देख लेती है तो वह गुस्से से लाल हो जाती है और 'दिगन्त' अपनी पत्नी को प्रताड़ित करता हुआ कहता है- "मर्द मर्द होता है" और 'पुनिता' को चाँटा मार देता है और चेतावनी देते हुए आगे कहता है-"वह जो चाहे करेगा, उसे रोकने-टोकने का कोई अधिकार नहीं उसे जो करना है, कर ले।"[198] 'पुनिता' अपने पति द्वारा प्रताड़ित होकर घुटन भरी जिन्दगी जीने को विवश है। सुप्रिया पाठक पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की घुटन व प्रताड़ना भरी जिन्दगी जीने के लिए अपने विचार प्रस्तुत करती है इनका मानना है कि स्त्री को अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ कर ही अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकती है वे अपने कथन की पुष्टि करती हुई कहती है-"स्त्री मुक्ति अकेले स्त्री की मुक्ति का प्रश्न नहीं है बल्कि यह संपूर्ण मानवता की मुक्ति की अनिवार्य शर्त है और उसका हिस्सा है। दरअसल यह अस्मिता की लड़ाई है। इतिहास ने यह साबित भी किया है कि आधी आबादी की शिरकत के बगैर क्रांतियाँ सफल नहीं हो सकती।"[199]

4.1.5 संपत्ति से बेदखली :

भारतीय संविधान के अंतर्गत स्त्री-पुरुषों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं माना जाता है। स्त्रियों के अधिकारों के लिए भारतीय संविधान अनेक अधिनियम पारित किए है। जिसके अन्तर्गत स्त्रियों को समाज में न्याय प्राप्त हो एवं उनकी स्थिति और सुरक्षा को सुधारा जा सके। भारतीय संविधान में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 में पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार स्त्रियों को उनके पिता की संपत्ति में समान हिस्सा देने का प्रावधान है। 2003 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 6 के संशोधन में यह प्रावधान है कि बेटियों को भी बेटों के समान अनिवार्य रूप में समान रूप से भागीदारी मिली है। "1956 के अधिनियम द्वारा महिलाओं के संपत्ति संबंधी अधिकारों में भी आमूलचूल परिवर्तन लाया गया है। आज एक लड़की अपने पिता की संपत्ति में से उतनी ही संपत्ति पाने की अधिकारी है जितना कि पुत्र यानि कि जहां तक पिता की संपत्ति का सवाल है लड़का एवं लड़की दोनों ही बराबर रूप से उत्तराधिकारी है किन्तु जहां तक पैतृक (दादालाई) से प्राप्त संपत्ति का सवाल है आज भी महिला की स्थिति पुरुष जैसी नहीं है। बाप-दादाओं की संपत्ति में से जितना हिस्सा लड़की को मिलता है उससे कई गुना लड़का प्राप्त करने का अधिकारी है।"[200]

विकास नारायण राय स्त्री की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि संपत्ति का हिस्सा मांग लेने से परिवार की शांति भंग हो जाती है। वे 'स्त्री की उपस्थिति बदली है, स्थिति नहीं' के अन्तर्गत लड़कियों को संपत्ति में दखल देने का अधिकार नहीं है-"स्त्री को लेकर यथास्थितिवादी नजरिए से दो तरह के तर्क होते हैं। कितने ही लोग यह कहते मिलेंगे कि भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान सदा से ऊँचा रहा है, अब लड़की की आजादी के नाम पर स्वच्छन्दता या नग्नता की इजाजत तो नहीं दी जा सकती, आज की कानून-व्यवस्था को देखते हुए लड़कियां घर में ही सुरक्षित मानी जा सकती है। मां-बाप की संपत्ति में उन्हें हिस्सा देने से परिवार बंट जाएंगे और भाई-बहन का परस्पर स्नेह नहीं रहेगा। ससुराल में तो उनका हिस्सा होता ही है, परिवार की शांति के लिए एक का (पत्नी का) दबकर रहना उचित ही है; महिला सम्बन्धी कानूनों का लाभ कुछ नहीं क्योंकि उनका व्यापक दुरुपयोग ही हो रहा है। यानी जो जमाने से चलता रहा है वही चलते रहना

ठीक है।"[201] उर्मिला शिरीष की कहानी 'पत्थर की लकीर' में 'शैला' की बुआ अपने परिवार से अपनी संपत्ति का हिस्सा मांगती है। तो उसके भाई-भाभी एवं परिवार के लोग कोसने लगते है। 'शैला' की बुआ को ससुराल में पति द्वारा प्रताड़ित व अत्याचार सहना पड़ता है। दर-दर की ठोकरें सहनी पड़ती है जिससे वह अपनी संपत्ति का हिस्सा मांग कर अपना जीवन शांति से जीना चाहती है परंतु मायके में उसे अन्याय ही मिलता है। 'शैला' अपनी बुआ की स्थति को समझते हुए अपनी माँ से बुआ के न्याय की मांग करती हुई कहती है-"झेलना किसे कहते है मम्मी, आप जानती है?"

"क्यों नहीं होता। क्यों नहीं हो सकता। यहां इतना पैसा है, बुआ को कुछ करवा दो। उनके नाम एक फ्लैट खरीद दो। पैसा आएगा तो जी सकेंगी। आपने सुना नहीं, उनको खाने-पहनने तक को नहीं मिलता। इस घर की हैं वो फिर इतना अन्तर क्यों? बोलो मम्मी, इतना अन्तर क्यों। मेरे पास हजारों के कपड़े हैं। गहनें ठूँसकर रख दिये आपने। घूमने पर खर्च हो जाता है पैसा। और उनको रिश्तेदार मानकर साड़ी दी जाती है एक तो वो भी प्राइज देखकर।" "बुआ, आप वापस चली जाओ। इस घर में किसी को आपकी परवाह नहीं।"[202]

'शैला' अपनी बुआ का पक्ष लेती है कि वह भी तो परिवार का हिस्सा है। अगर उन्होंने अपनी दुखमय जिन्दगी को ठीक करने के लिए अपने हिस्से का पैसा मांग भी लिया तो क्या बात हो गई ये तो अधिकार है उनका। 'शैला' फिर माँ से संपत्ति का हिस्सा अपनी बुआ के लिए मांगती है। क्योंकि उसकी बुआ ने अपना हिस्सा मांगने के लिए नोटिस भिजवा देती है तो परिवार में तरह-तरह की बातें बनाई जाती है कि कितनी चालाक निकलीं। 'शैली' अपनी मम्मी से कहती है- "आप लोगों ने इतना पैसा होते हुए भी सारी सम्पत्ति बाँट ली वो भी तो उनकी सन्तान है। क्यों नहीं दिया उनको उनका हिस्सा। आपके नाम बँगला है, चाचा और पापा के नाम इतना कुछ है सिर्फ नहीं है तो बुआ के नाम।"

'शैला' की मम्मी गुस्से से कहती है- "ये भी बँटवारा करवाएगी, देख लेना। उनकी बात को पत्थर की लकीर मानती है।"

"वैसे ही मांग लेती। यह बदला किस का लिया है।"

"कितनी टुच्ची निकली यह तो।"

"दिल में पाप था। यही बात कह देती।"[203]

अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'बाँध न पाओगे नदी को' की नायिका 'सिम्मी' अपने पिता की मृत्यु के बाद और भाई-भाभी द्वारा अलग रहने के बाद घर की सारी जिम्मेदारी निभाती है। 'सिम्मी' की मां की मृत्यु होने पर उसके भाई-भाभी घर हड़पने के लिए आ जाते है तो 'सिम्मी' समाज कल्याण कार्यालय द्वारा अपने भाई पर मुकदमा दायर करती है और कहती है-"माँ के नाम का वो मकान आज 21 लाख का है। मैं समाज कल्याण वालों से मिली और मैंने भाई पर मुकद्मा दायर किया कि मुझे भी मकान का तीसरा हिस्सा मिलना चाहिए। यानि 7 लाख रुपये।" उसका भाई सुनकर हैरान हो जाता है और कहता है-"बित्ते भर की छोरी और ये उड़ान।"

"लड़कियों का जायदाद पर कोई हक नहीं होता।"[204]

'सिम्मी' को अपने भाई-भाभी का कोई सहारा नहीं मिलता उन्हें तो केवल मकान अपने नाम करने से मतलब होता है और 'सिम्मी' के चरित्र पर लांछन लगाकर उसे अपमानित भी करते है आगे 'सिम्मी' कहती है- "मुकदमा दस साल तक चला। भाई के वकील ने जज के सामने मेरे चरित्र पर झूठी तोहमतें लगाई। मुझे लगा मेरे भाई ने सरेआम मेरा चीर-हरण कर दिया। मैं घर आकर बहुत रोई। मैंने मुकद्मा वापिस ले लिया और आश्चर्य की बात देखो उसने सोचा मैं डर गई। मेरे इस कदम से एक बात हुई कि मेरा भाई अब मेरे यहां आने लगा है। वो संवेदहीन भाई ! भगवान ने भी कैसे-कैसे रिश्ते बनाए है।"[205]

समाज में कानून स्त्रियों को न्याय प्रदान करने के लिए बनाया गया है परंतु उसे न्याय मिलना तो बहुत दूर की बात है। सामाजिक न्याय की अवधारणा को समाज व परिवार के लोग प्रदान कराने में असमर्थ है। 'पत्थर की लकीर' कहानी में 'शैला' की बुआ संपत्ति के मामले में अपनी आंतरिक पीड़ा व अन्याय को व्यक्त करती है कि परिवार वाले उसे कितनी यातनाएं, अपमान, घृणा का पात्र मानते है। संपत्ति का हक मांग लेने से परिवार में सारे रिश्ते समाप्त हो जाते है। वह केवल अपनी भतीजी 'शैला' जो उसके पक्ष में होती है उसे अपनी वसीयत वापस भेज देती है- "प्रिय शैला, मैं अपनी वसीयत भेज रही हूँ तुम्हारे नाम। जो माँगा था वो मेरा हक था। अपने अस्तित्व के लिए, अपने प्राणों के लिए उस समय

उसी की जरूरत थी- एक ही माँ-बाप की सन्तान में इतना अन्तर। वही नाम, कुल, गोत्र, वही पहचान। खून एक होता है तो उसकी चीजें क्यों अलग हो जाती हैं? वही द्वन्द्व था जो सामने आया था। मेरी प्यारी बच्ची, मेरी तो उम्र निकल गयी, बेवा जीवन जीते हुए.... जो कोई भी एक क्षण जीना नहीं चाहेगा। काश, मेरे पिता और भाई खड़े हो जाते। वो तो नहीं हुए। मगर तुम खड़ी हुई थीं। तुम्हारा वह आत्मिक लगाव, वो चिन्ता.... मेरी प्यारी रानी, तुम्हीं को क्यों! क्योंकि तुम भी उस घर की बेटी हो। उस घर की बेटियां हर बात में शामिल रही हैं, दुख में, बीमारी में सिर्फ शामिल नहीं हो पातीं तो जमीन के टुकड़ों और घर के आंगनों में। वे जमीन के टुकड़ों और आँगन किसी के जीवन सँभाल सकते हैं, सहारा बन सकते हैं जो वहां बेकार पड़े होते हैं....। काश, कोई समझ पाता।"[206] उर्मिला शिरीष की अन्य कहानी 'जुड़े हुए हाथ' में 'ललिता' को भी अपनी पिता की संपत्ति से कुछ नहीं मिलता है उसकी 'अम्मा' दूसरे के घर कपड़े धोकर अपना और बेटी का गुजारा चलाती है जब उसकी 'अम्मा' का काम छुट जाता है तो वह 'ललिता' की पढ़ाई की फीस के लिए चिन्तित हो जाती है। 'ललिता' अपनी 'अम्मा' से पूछती है -

"अम्मा, बता क्या बात है?"

"अब तेरी फीस के लिए पैसे कहाँ से लाऊँगी? अपने बाप से बोल, इन्तजाम कर दे। अपने लड़कों के लिए सब कुछ छोड़ दिया। तेरे लिए इतना ही कर दे।"[207]

अनिता गोपेश की कहानी 'बोल मेरी मछली कित्ता पानी' में पिता अपनी बेटी को संपत्ति को बेदखल करने की चेतावनी देता है। वह अपनी बेटी का विवाह शर्मा जी के बेटे से तय कर देता है लेकिन उसकी बेटी यह विवाह करने से मना कर देती है। 'डॉली' का पिता उस पर गुस्से से चिल्लाता हुआ कहता है- "समझ क्या रखा है तुमने? दुनिया क्या कहेगी? शहर भर में थू-थू करवाओगी हमारी। इसका जरा भी ख्याल है कि चुनाव सिर पर है।" 'डॉली अपने पिता की बात मानने से मना कर देती है तो उसके पिता उसे चेतावनी देते हुए कहते है- "जाओ, जहाँ चाहो वहाँ जाओ, पर याद रखना मेरी सम्पत्ति से फूटी कौड़ी भी नहीं मिलेगी तुम्हें, अगर तुमने मेरी बात न मानी।"[208]

बानो सरताज की कहानी 'वारिस' में 'सरोज' अपने घर की सारी जिम्मेदारियों को अच्छी तरह से निभाती है। उसका युवा भाई 'कमल' घर छोड़ कर चला जाता है। पुत्र के गम में उसके पिताजी की मृत्यु हो जाती है। उसकी मां भी लाचार व बेबस हो जाती है। 'सरोज' सारा जीवन अपने मां-बाप के लिए ही समर्पित कर देती है। अचानक एक दिन जब 'सरोज' का भाई घर आता है तो उसकी माँ प्रसन्न हो जाती है। 'सरोज' का भाई 'कमल' शादी कर लेता है और उसे बताता है कि उसके दो भतीजे भी है। 'सरोज' का भाई अपने घर की संपत्ति को लेने आता है और 'सरोज' से कहता है- "दीदी, मां ने बताया कि पिताजी ने मकान तुम्हारे नाम कर दिया है।"

"अब वापस आ ही गया हूं... हूं तो इस घर का बेटा... इस मकान का सही हकदार ! एकमात्र उत्तराधिकारी ! अकेला वारिस।"[209]

'सरोज' मन ही मन सोचने पर विवश है कि एक स्त्री को ही क्यों सब कुछ झेलना पड़ता है। उसी के हक में अन्याय क्यों आता है? वह सोचती है-"जीवन भर उसने इसी दर्शन को अपनाया है। छोटे-छोटे मतभेद भुला कर जीवन को सौंदर्यमय बनाये रखने का प्रयत्न किया... पर उसे मिला क्या? भाई की घृणा और मां की उपेक्षा। भाई जो लौट कर आया है तो इस अधिकार के साथ कि पिता की संपत्ति का सही उत्तराधिकारी वही है और मां भी उस का पक्ष ले रही है।"[210] 'सरोज' को जब पता चलता है कि 'कमल' को क्षय रोग से पीड़ित है उसकी माँ उसे देखकर रो रही है तो 'सरोज' का अस्तित्व मोम की तरह पिघलने लगता है और वह शीघ्रता से 'कमल' को कहती है- "मैंने डाक्टर से बात की है भइया, तू शीघ्र ही अच्छा हो जायेगा। मै हू ना...मैं... तेरी दीदी तेरे लिए अपने प्राण दे देगी... इन लाल फूलों की भांति तू भी मुस्कुरायेगा.... जीवन से भरपूर मुस्कान तेरी पहचान बनेगी और भइया। तू दिल पर कोई बोझ न रख... पिता जी का असल वारिस तो तू ही है... मै कल ही वकील से मिल कर मकान तेरे नाम कर दूंगी।"[211] 'सरोज' अपने भाई 'कमल' की खुशियों के लिए बलिदान व त्याग कर देती है परन्तु उसका भाई केवल संपत्ति के लालच में बहन की खुशियों का गला घोंट देता है। समाज में पुरुष अपने साथ कभी अन्याय नहीं कर सकता है। वह सुरक्षित है वह केवल स्त्रियों के पक्ष में ही अन्याय को धकेलता है।

"महिलाओं की संवेदनशीलता, भावनात्मक रूप से औरों पर निर्भरता, उनका मातृत्व का गुण और परिवार के साथ उनके भावनात्मक लगाव भी ऐसे कारण है जो महिलाओं के पैरों में बेड़िया डाल देते है।"[212]

समाज में स्त्री व पुरुष की असमानता के तहत स्त्रियाँ ही दु:ख की भागीदारी है। अन्याय से पीड़ित है। न्याय से वंचित है। कानून व्यवस्था के तहत अपने अधिकारों व सामाजिक न्याय को प्राप्त करने में असमर्थ है। स्त्रियों के प्रति भेदभाव के अंतर्गत आज भी नारी प्रत्येक परिस्थितियों में अन्याय की शिकार है।

4.2 महिला सशक्तिकरण : स्त्री संदर्भ का न्याय पक्ष :

भारतीय संविधान के अंतर्गत स्त्री व पुरुष के भेदभाव को मिटाकर समानता प्रदान की गई है परन्तु समाज के अंतर्गत पुरुष प्रधानता का वर्चस्व कायम है। समाज संविधान द्वारा सामाजिक न्याय की अवधारणा में स्त्री न्याय के पक्ष में अपनी इच्छा को अधिक व्यक्त नहीं करता है। स्त्री जो सदियों से पुरानी परंपराओं में जकड़ी हुई है परंतु समय के अनुसार परिवर्तन आने के बावजूद भी अपनी स्थिति को परखते हुए स्वयं सशक्त व जागरूक हुई है। संविधान द्वारा दिये गए अधिकारों का प्रयोग कर आज नारी स्वयं ही सशक्तिकरण के मार्ग की ओर अग्रसर है। सामाजिक न्याय की अवधारणा में समाज में प्रत्येक सदस्यों के कल्याण हेतु विकास की वृद्धि की जाती है। राजेन्द्र यादव सामाजिक न्याय का निरूपण इस प्रकार प्रस्तुत करते हुए कहते है- "मेरी समझ में न्याय का अर्थ होता है। 'बराबर का व्यवहार' और 'बराबर का स्टेटस'। जो अवसर या सुविधा आप अपने लिए चाहते हैं, वहीं दूसरों के लिए भी दें, यही न्याय है मैं समझता हूँ कि दुनिया का सारा साहित्य इसी न्याय की पुकार है। सामाजिक न्याय का अर्थ है कि दूसरे के अधिकार न मारे जायें, दूसरे का अवसर न मारा जाये और उसे उसका प्राप्य मिले।"[213] समाज में स्त्री को लिंग के आधार पर भेदभाव किया जाता है परन्तु वर्तमान में स्त्री स्वयं सशक्त होकर प्रत्येक परिस्थितियों को चुनौती दे रही है। "महिला सशक्तिकरण वह प्रक्रिया है तथा उस प्रक्रिया का नतीजा है, जिसके द्वारा महिलाएं भौतिक मानव, बौद्धिक एवं वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करती हैं तथा समाज की संस्थाओं एवं ढांचों में पुरुष प्रधान समाज की विचारधारा एवं लिंग आधारित भेदभाव को

चुनौती देती है तथा सामाजिक समता पर आधारित अंतर्व्यक्ति शक्ति संबंधों की स्थापना करती है।"[214]

आज स्त्रियां सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक क्षेत्र में सशक्त हुई है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के बराबर अपना योगदान देती है भले ही पुरुष स्त्री को अपने समान का दर्जा न देता हो परन्तु स्त्रियां अन्याय के प्रति जागरूक हो गई है। दीपक शर्मा की कहानी 'हूबहू' में 'प्रोफेसर शांडिल्य' की मुलाकात ट्रेन में सफर करते हुए 'प्रोफेसर स्तुति कुलश्रेष्ठ' से होती है। वे दोनों ही एक सेमिनार में जा रहे होते है। दोनों के बीच स्त्री की समानता को लेकर बातें होती है। 'प्रोफेसर शांडिल्य' कहते है-"आप हूबहू मेरी पत्नी की तरह बहस कर रही हैं। वह भी नारीवाद के उल्लेख से इसी प्रकार उत्तेजित हो जाया करती हैं, लेकिन मैं फिर भी उसे फ्रायड का एक वाक्य कह सुनाता हूँ-बायोलॉजी इज डेस्टिनी जैविकी ही नियति है। पुरुष अपने दावे और अपनी अपेक्षाएं कभी नहीं छोड़ सकते और स्त्रियों को भी अपना आत्म संयम और अपनी पोषणशक्ति नहीं छोड़नी चाहिए....।"

"मुझे विश्वास है आपकी इस बात से वे अवश्य ही अपनी असहमति जताती होंगी...।"

"जताती है। खूब जताती है, लेकिन मैं परवाह नहीं करता। जो मुझे गलत लगता है, उसे मैं गलत ही कहूँगा...।"

"आप हूबहू मेरे पति की तरह बात कर रहे हैं और जवाब में जो मैं उनसे कहती हूँ, आपसे वही दोहरा देती हूँ, गलत नारीवाद नहीं, पितृतन्त्र है, उसकी घातक सोच है जो दाम्पत्य जीवन में पत्नी को हमेशा हाशिये पर देखना चाहती है।"[215]

आज समाज में स्त्री शिक्षित व शिक्षा प्राप्त करने में जागरूक है। संविधान द्वारा दिये गए अधिकारों को अर्जित करने में सक्षम व सचेत है। 'सौदामिनी' कहानी में 'उमा' अपने सहेली 'सौदामिनी' को शिक्षा में आ रही रूकावट को लेकर बातें करते है कि समाज में उसके अड़ोस-पड़ोस वाले उसकी शिक्षा को न ध्यान में रखकर केवल विवाह की ही बातें करते है तो 'सौदामिनी' जागरूक होकर कहती है-"नहीं करते, इसमें पड़ोसियों को क्या आता-जाता है?"

"उनकी कमाई से तो नहीं पढ़ाते। तुम्हारी अम्मा उन्हें खरी-खरी क्यों नहीं सुना देती कि हमारी इच्छा, नहीं करते।"[216] 'सौदामिनी' को भी अगर उसकी दादी

कहती कि पढ़ कर क्या करोगी तो वह तुरन्त जवाब में कह देती- "अरे ! क्या सिर्फ नौकरी के लिए ही पढ़ा जाता है?"[217]

सुमति सक्सेना लाल की कहानी 'कौशल्या दी' में 'कौशल्या दी' जागरूक व स्वाभिमानी पात्रा है। वह जीवन की समस्याओं, अभावों व आघातों से परिचित है। 'कौशल्या दी' समाज में नारी शिक्षा व अस्तित्व की रक्षा, मान सम्मान के लिए हमेशा प्रेरित करती है और कहती है-"टीचिंग सिर्फ नौकरी ही नहीं होती, टीचर स्टूडेंट की रोल मॉडल होती है इसलिए सब काम उसे बहुत सोच-समझ कर करने होते हैं नहीं तो एक ही जन नहीं भटकता, बहुत से बच्चे भी भटकते है।।"[218]

नमिता सिंह की कहानी 'नीलम' में पात्रा 'नीलम' जागरूक व सशक्त है। समाज में लड़कियों के प्रति धारणाओं को भलि-भान्ति समझती है एवं उसका विरोध भी करती है। कहानी में 'शहनाज़ आपा' 'नीलम' की शादी को लेकर बातें करती है और कहती है-"यार, ये नीलम शादी क्यों नहीं करती.... अच्छी खासी उम्र हो रही है...." 'नीलम' विरोध करती हुई सहज भाव से उत्तर देती हुई कहती है-"आप भी शहनाजऋ आपा.... यूँ वीमेंस डे पर औरतों की आजादी की बात करेंगी.... फैसले लेने की आजादी की बात करेंगी.... और फिर ये सवाल....।" आगे कहती है-"क्या मुसीबत है। लड़की का मसला हो तो घूम फिर कर बात फिर शादी पर ही आ टिकती है।"[219]

'नीलम' के विवाह को लेकर समाज में बातें होती है। नीलम शिक्षित व सशक्त नारी है-"अरे भई, पढ़ी-लिखी लड़की है। लायक है। यूनिवर्सिटी में पढ़ा रही है। इसके लिए लड़कों की कोई कमी होगी....?"[220]

रत्नकुमार सांभरिया की कहानी में 'मीता' के पति की मृत्यु के बाद उसे चपड़ासी की नौकरी मिलती है। 'मीता' छोटे काम की हीन भावना से ग्रस्त न होकर जागरूक होती है और निश्चय करती है- "मीता, सोचती हो, अबला हूँ। नहीं। तहसील है। चपड़ासी का काम है। यहां औरत मरद क्यों ढूंढती हो। कल्पना चावला अंतरिक्ष में जा सकती है। संतोष यादव दो बार एवरेस्ट पर चढ़ सकती है। तुम यह काम क्यों नहीं कर सकती हो।"[221] रत्नकुमार सांभरिया की अन्य कहानी 'पुरस्कार' में 'नीना' अपना कहानी संग्रह अकादमी में प्रकाशित करवाना चाहती है। परन्तु अकादमी अध्यक्ष 'धौज जी' 'नीना' पर बुरी दृष्टि रखता है जिसे 'नीना' परख

लेती है। उसके द्वारा किये भ्रष्टाचार व अन्याय का विरोध करती है कि वह शिक्षित व न्याय के प्रति जागरूक है वह स्पष्ट विरोध करती हुई कहती है- "धौज जी कथा पुरस्कार के लिए प्रेषित मैं अपनी प्रविष्टि वापस लेती हूँ। आप मेरी कहानी को भी अकादमी की पत्रिका में प्रकाशित न करें नीना।"[222]

योगिता यादव की कहानी 'बस्ती से बाहर' की नायिका 'खुर्शीद' के पिता 'अब्दुल रब' को मस्जिद का छज्जा गिरने से दोषी मानते हैं बस्ती वाले 'अब्दुल रब' व उसके परिवार के साथ ठीक व्यवहार न करके अन्याय करते है। कहानी में 'खुर्शीद' जागरूक व स्वाभिमानी लड़की है। वह अपने पिता को अपने प्रति हुए अन्याय का विरोध करती हुई कहती है- "अब्बू आप परेशान न हों। जब हमारी कोई गलती ही नहीं है तो हम क्यों देंगे हर्जाना?"[223]

गांव में बस्ती वाले 'खुर्शीद' को सामान देने से मना कर देते है क्योंकि उसके पिता दोषी है। 'खुर्शीद' पूरे आत्मविश्वास के साथ विरोध करती है और अपनी अम्मी से कहती है-"अम्मी आप बताइए क्या-क्या लाना है बाजार से? मैं जाऊंगी सामान लेने।' शायद बस्ती वाले नहीं जानते कि इस बस्ती से बाहर भी कई दुकानें हैं। उन्हें तो हमें सामान देने में कोई एतराज नहीं होगा।"[224]

समाज में स्त्रियों को पुरुषों के मान-सम्मान एवं विकास के अवसर बहुत कम मात्रा में उपलब्ध होते हैं, परन्तु आज की महिला अपने जीवन के समस्त महत्त्वपूर्ण निर्णय स्वयं ले सकती है। समाज में स्त्री अपने मान-सम्मान की रक्षा करते हुए पुरुष की संकीर्ण मानसिकता एवं शोषण प्रवृति को प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट करती है। उपरोक्त कथन का सार्थकता रंजना जायसवाल की कहानी 'दूसरा थप्पड़' की 'निशा' द्वारा स्पष्ट होती है। 'निशा' बेहद संस्कारशील व शालीन लड़की है। 'निशा' का विवाह बेहन माडर्न लड़के 'अनीश' के साथ होता है। 'अनीश' 'निशा' के सीधे स्वभाव को सहन न करते हुए उस पर अत्याचार करता है और उसे भी अपनी तरह मार्डन बनाना चाहता है परन्तु 'निशा' इस बात के खिलाफ होती है। 'अनीश', 'निशा' को थप्पड़ मारता है। 'निशा' अपने पति का विरोध कर अपने सशक्त रूप को स्पष्ट करती हुई कहती है-'खबरदार, मिस्टर अनीश, अब मेरे पास कोई दूसरा गाल नहीं है।"[225]

'निशा' अपने पति 'अनीश' को पति-धर्म एवं महिला के अस्तित्व के बारे में समझाती है कि पुरुष अपने कर्त्तव्यों से किस तरह पीछे हट रहा है वह नारी को केवल भोग्य वस्तु के रूप में स्वीकार करता है। 'निशा' अपने पति के लाचारीपन पर व्यंग्य करते हुए कहती है-"पति और आप! पति का अर्थ भी जानते हैं। पति का अर्थ होता है रक्षक। जानते हैं यह शब्द कब अस्तित्व में आया? कैसे जान सकते हैं, चलिए मैं ही बताये देती हूँ, जब मनुष्य का जीवन शिकार पर निर्भर था, तब स्त्री-पुरुष दोनों शिकार करने जाते थे। विवाह की प्रथा तब न थी। लोग समूहों में रहा करते थे। स्त्री प्रकृति से ही पुरुष की देह से दुर्बल है। कभी-कभी किसी भयानक शिकार का पीछा करते समय वह थकने लगती थी। उस समय जो पुरुष उस कंधे पर लादकर मीलों दौड़ता हुआ शिकार से उसकी रक्षा करता था, वही उसका पति हो जाता था। हालांकि तब वे इस शब्द के अर्थ से अवगत नहीं थे न ही इस शब्द का उच्चारण करते थे, पर भाव तब भी वही था। आपने तो मुझे पराये पुरुष के पास भेज दिया था। कल फिर किसी के पास भेजेंगे। वेश्या बना देंगे मुझे। ऐसे व्यक्ति के साथ मैं नहीं रह सकती।"[226] 'निशा' को अपने पति 'अनीश' द्वारा न्याय न मिलने पर वह स्वयं ही निर्णय करती हुई आगे कहती है-"नहीं, अनीश बाबू.... अब और नहीं। जानती हूँ आप अभी भी मुझसे प्रेम नहीं करते। पिता के डर से मुझे घर में रखना चाहते हैं। फिर कल रात से ही आप मेरे लिए एक पराये पुरुष हो गये हैं। अब मेरी यह देह आपके स्पर्श को सह नहीं पाएगी।"[227] इसी तरह से पुरुष द्वारा स्त्री पर अत्याचार व अपमान जया जादवानी की कहानी 'परिदृश्य' में भी मिलता है कि पुरुष स्त्री की आधुनिक सोच को भी सहन नहीं कर पाता है परन्तु आज स्त्री पुरुष के अत्याचार के प्रति, अन्याय के प्रति सचेत है। 'परिदृश्य' कहानी में 'मि० गोयल' अपनी पुरुष मानसिकता को अपनी पत्नी पर व्यक्त करता है कि अगर वह उसके पक्ष में नहीं है तो उसे अत्याचार सहना होगा। परन्तु आज स्त्री पुरुष प्रधान की बेड़ियों से मुक्त होकर पूर्ण रूप से जागरूक हुई है। मि० गोयल अपनी पत्नी के विरोध को सहन न करते हुए कहता है-"बहुत घमंड हो गया है तुझे अपनी फिलॉसफी पर। बातें तो ऐसी करती है.... ज्यादा बकवास की तो हाथ पैर तोड़ कर घर बैठा दूँगा।"

'मि॰ गोयल' की पत्नी विरोध करती हुई कहती है- "कोशिश करके देख लेना।"

"मुझे नौकरी मिल गई है।"

"अच्छा तो?"

"मैं जा रही हूँ।"

"कहाँ?"

"रहने का भी बन्दोबस्त कर लिया है।"

"अच्छा, एक पुरुष भी तो नहीं ढूँढ लिया है?"

"नहीं, उसकी कोई जरूरत नहीं। एक अनुभव ही काफी है।"

"देखो बहुत बात मत करना।"

"मैं बात नहीं कर रही। जा रही हूँ, अपनी मर्जी से... सब छोड़कर।"

"सब छोड़कर? सोच लो, लौट के मत आ जाना कहीं। एक बार गई तो...।"

"एक बात कहूँ। जीती हुई औरत कभी घर नहीं लौट सकती। हमारे समाज में घर एक राहत की साँस लेने की जगह नहीं, जाने कितनी दुविधाओं, मुश्किलों, चिन्ताओं, परेशानियों, कुंठाओं का अजायबघर है। यह पाँव की ऐसी बेड़ी है, जिससे एक बार छूटने के बाद कोई वापस नहीं आना चाहेगा। यहाँ सिर्फ हारी हुई औरतें पनाह लेती हैं क्योंकि फिर वे इसके सिवा कहाँ जाएँगी?"[228]

समाज में पुरुष की सोच यह है कि स्त्री केवल पुरुष के अधीन है। आज स्त्री आर्थिक क्षेत्र से भी मजबूत होकर न्याय पाने में समर्थ है। अमरीक सिंह 'दीप' की कहानी 'मम्मी, ये पापा हैं....' में 'दिलीप' शिक्षित व आर्थिक स्तर पर मजबूत है। उसका पति 'जसवंत' उसे बार-बार प्रताड़ित करता है परन्तु 'दिलीप' अकेली ही अपने बच्चों का पालन-पोषण करती है वह स्वयं ही अपने घर को मेहनत से बनाती है तो अचानक उसका पति आकर उसे अपमानित करने लगता है तो 'दिलीप' अपने पति को जबाव देती हुई कहती है-"घर तुम्हारा नहीं, मेरा है... सिर्फ मेरा। अपनी मेहनत और मशक्कत से बनाया है इसे मैंने। कौन-सा मुंह लेकर आए हो इस घर पर अपना दावा ठोकने?"[229] 'जसवंत' अपनी पत्नी 'दिलीप' पर पति होने का दावा ठोकता है और स्वयं को उसी घर में रहने के लिए जबरदस्ती करता है

कि यह उसका हक है क्योंकि वह पति है। 'दिलीप' क्रोध से उत्तर देती हुई कहती है–"शर्म नहीं आती अपनी इस गंदी सोच पर तुम्हें? जिन्दगी में कभी एक धेला भी कमाकर रखा है तुमने मेरी तली पर या कि बस अधिकार जताना और गला घोंटना ही आता है तुम्हें।" 'जसवंत' की चालों से परिचित 'दिलीप' आगे कहती है– "नहीं, मैं तुम्हारी नौकरानी नहीं हूं... और अपनी गंदी हरकतें छोड़ देने की कसमें तुम पहले भी कई बार खा चुके हो। हां, तुम अगर अपना माफीनामा स्टांप पेपर पर लिखकर उस पर दस्तखत करके मुझे दे दो तो मैं तुम्हें माफ करने के बारे में सोच सकती हूं।"[230]

'दिलीप' की बातें सुनकर उसका पति 'जसवंत' उसे ओर ज्यादा अपमानित और गाली–गलौच करता है। पर 'दिलीप' अपने पति का सामना डट कर करती है और कहती है– "जबान संभाल कर बात करो। जिस स्तर के लोगों के साथ रहते हो उसी स्तर की ही बात करोगे तुम। मैंने तुम्हें आने का नियंत्रण तो नहीं भेजा था। सच तो यह है कि तुमसे अलग होने के बाद मैं तुम्हारी परछाई से भी बचती रही हूं और तुमने यह क्या हाल बना रखा है मेरे घर का?"[231] 'जसवंत' आग बबूला होकर 'दिलीप' को थप्पड़ मारने के लिए उठ खड़ा होता है तो 'दिलीप' उसका हाथ बीच में ही रोक देती है और आक्रोश से भर जाती है और कहती है– "खबरदार, मुझे छूने की भी अगर आज तुमने कोशिश की तो प्रलय हो जाएगी। अच्छा यही है कि जैसे आए हो वैसे ही उलटे पांव दिल्ली लौट जाओ और भूल जाओ कि दिलीप नाम की औरत तुम्हारी कभी कुछ लगती थी। बस, इसी में तुम्हारी भलाई है। तुम्हारी सूचना के लिए मैं बता देना जरूरी समझती हूँ कि जिस दिन तुम्हारा फोन आया था उसी दिन महिला थाने में तुम्हारे खिलाफ एफ॰आई॰आर॰ दर्ज करवा दी थी मैंने। अगर तुमने कोई गलत हरकत की तो अभी थाने फोन करके पुलिस बुलवा लूंगी मैं।"[232]

आज स्त्री अपने अधिकारों वे सामाजिक न्याय के प्रति सचेत है। 'दिलीप' की बेटी 'प्रभजोत' भी न्याय के प्रति सचेत है और अपनी माँ 'दिलीप' का साथ देती है कि हम न्याय पा कर ही रहेंगे 'प्रभजोत' अपनी मम्मी से कहती है–"मम्मी, ये पापा है!.... थू है ऐसे पापा के होने पर। मम्मी, औरत होना कोई पाप नहीं है। मेरी एक फ्रेंड के पिता वकील हैं। कल चलिएगा मेरे साथ। आप तलाक की

अरजी दीजिए... गवाह मैं बनूंगी।"[233] मंजु वनिता की कहानी 'सागर और सीपियाँ' में भी 'स्मिता' अपने पति के अन्याय के प्रति विरोध करती है। अपनी दो बेटियों का पालन-पोषण भी स्वयं करती है 'स्मिता' अपने पति 'सागर' के विरूद्ध सशक्त होकर कहती है-"मैं तुम्हें कभी माफ नहीं कर सकती। तुमने तीन-तीन जिन्दगी बर्बाद की है। तुमने मेरी बेटियों से उनका बचपन, उनके सपने छीन लिए जब उन्हें तुम्हारे सहारे, तुम्हारे प्यार की जरूरत थी तब तुमने उन्हें नफरत दी। ठुकरा दिया। आज वो बड़ी हो गयी है। आत्मनिर्भर हैं। दिशा लेबर कमिश्नर है और निशा कस्टम ऑफिसर है। वे दोनों तुमसे बेहद नफरत करती है। उन्होंने तो जिन्दगी भर शादी न करने का, कुँवारी रहने का संकल्प ले लिया है। उन्होंने मुझे तिल-तिल कर मरते देखा है। उन्होंने मुझे अस्तित्व के लिए सारे समाज से लड़ते देखा है। वे तुम्हें कभी माफ नहीं कर सकती।"[234] समाज में पुरुषों द्वारा पीड़ित स्त्री अब जाग गई है वह सदियों से हो रहे अन्याय के प्रति चेतनाशील है। 'दिशा' जब अपने पिता 'सागर' को घर में देखती है तो गुस्से से कहती है- "आप यहाँ क्यों आये है?"

"कुछ काम था।"

"कोई काम तो तो ऑफिस में आते।"

"मैं तुम्हारी मम्मी के नाम से एक नयी यूनिट खोल रहा हूँ ऐज ए चीफ गेस्ट आपको इनवाइट करने आया हूँ।"

"थैंक यू मि॰ अग्निहोत्री ! इतने सालों के बाद आपको हमारा ख्याल कैसे आया? फॉर इनफॉरमेशन आपकी दोनों फैक्ट्री बहुत जल्दी बन्द होने वाली हैं, इसलिए नयी यूनिट खोलना तो बहुत जरूरी है।"[235] 'दिशा' की बातों से उसका पिता भावुक होकर अपनी बेटी पर गर्व करने की बात कहता है तो 'दिशा' ओर भड़क जाती है और कहती है- "मत कहिये बेटी। मि॰ अग्निहोत्री आप कितने स्वार्थी है यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। ऐसी ही बनावटी बातों से माँ को छल चुके हो लेकिन अब बेटियों को नहीं छल पाओगे। मुझे पता है जब हमें खरीद नहीं सके तो अब इस तरह की बातों से इम्प्रैस करके अपने काले-कारनामों को सफेद कराना चाहते हो। हरगिज नहीं। हम लोग आपको कभी माफ नहीं कर सकते !"[236]

इक्कीसवीं सदी में सामाजिक न्याय को लेकर स्त्री अपने अधिकारों के लिए जागरूक है। स्त्री स्वयं अपने जीवन में अन्याय के खिलाफ आवाज उठाकर न्याय की मांग कर रही है। आशु रानी स्त्री सम्बन्धी विचार प्रकट करते हुए कहती है- "स्त्री शिक्षा समाज के बदलते हुए मूल्यों तथा आर्थिक स्वावलम्बन ने जहां उन्हें आर्थिक व राजनीतिक अधिकारों के प्रति सजग बनाया है, सामाजिक चेतना जाग्रत करने में योग दिया है, वहीं आजकल स्त्रियों ने नवीन भूमिकाएं ग्रहण की हैं और प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ती हुई उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं के परिणामस्वरूप ही विश्व की अर्थव्यवस्था के मंच पर महिलाओं की स्थिति, प्रभाव व आर्थिक भूमिकाओं संबंधी अध्ययनों व अनुसंधानों में वृद्धि हुई है।"[237]

आज समाज में स्त्री शिक्षित होकर अपने अधिकारों के प्रति सजग है परंतु इक्कीसवीं सदी में प्रत्येक स्त्री चाहे वो कामकाजी स्त्री हो, घरेलु स्त्री हो, ग्रामीण स्त्री हो, गरीब स्त्री हो आज पुरुषों की मार से, अपमान से, अत्याचार से, गाली-गलौच से, शोषण से, मानसिक व शारीरिक उत्पीड़न से अन्याय के प्रति सावधान है वह पुरुषों के शोषण का डट कर विरोध करती है। मंजु वनिता की कहानी 'फर्क' में 'ओमवती' किसी के घर पर नौकरानी का काम करती है। जब उसकी मेमसाहब उससे पूछती है कि वह कल क्यों नहीं आई तो 'ओमवती' अपनी बेटी सुनीता' के प्रति अत्याचार को लेकर परेशान थी वह अपनी बेटी के प्रति अन्याय का डट कर विरोध करती है और सबक सिखाती है वह अपनी मेमसाहब को बताती है-"पड़ोस का गुसाईं का लड़का दिन में ही दारू पीकर मेरे घर में घुस आया। सुनीता घर में अकेली थी। जब मैं पहुंची तो चीखने की आवाज सुनकर जल्दी से भीतर भागी। मुझे देखकर वो जैसे ही भागा मैंने दौड़कर पकड़ लिया। फिर क्या पड़ौस में हल्ला मच गया। सबने मिलकर उसकी जो पिटाई की कि क्या बताऊँ मेमसाहब नाक-मुँह में से खून दे गया। सबने चौकी ले जाकर थाने में बन्द करा दिया। इसी मारे मैं ना आ सकी।"[238]

एस०आर० हरनोट की कहानी 'मिट्टी के लोग' में 'अमरो' पर गरीबी के कारण अत्याचार व अन्याय होता है। 'अमरो' की मां 'रामेशरी' जमींदारों के द्वारा बेटी पर किया गया अन्याय सहन न करते हुए विरोध करती हुई कहती है-"चौधरी! अपने इस हरामी को बाहर कर। देखती हूँ इसकी मां ने कितना दूध पलाया है इस

लफंगे को। अमरो ने तो इसके दो दांत ही तोड़े हैं, मैंने इसकी गर्दन न काट दी तो रामेशरी न बोलियो। हम गरीब जरूर है चौधरी पर इज्जत नी बेची है। मेहनत का खाते-कमाते हैं। भीख नी माँगते किसी से। तेरे घर का काम इसलिए नहीं करते रे चौधरी की उसके बदले तुम म्हारी गांव की बहू-बेटियों की भी परवा न करो। काहे की परधानी है रे तेरी और काहे को इस अपणे कपूत को सिर पर चढ़ा दिया। क्या यही करता है रे लोगों की सेवा तेरा लाल। निकाल इसको बाहर, फिर देख इसकी मैं क्या गत बणाती हूँ।"[239]

इन्दु बाली की कहानी 'पाँचवाँ युग' में कहानी की नायिका 'विद्युत' को अपने पति, सास व ननद के अत्याचारों से पीड़ित है। उसके एक बेटा 'अंकुर' होता है। पाँच वर्ष बाद 'विघुत' का भाई उसे मिलने आता है। 'विघुत' अपने घर के काम में व्यस्त होती है और 'अंकुर' की देखभाल करने के लिए अपने पति को बार-बार कहती है और उसका बेटा घर की छत से गिर कर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो सारा दोष ससुराल वाले 'विघुत' पर लगा देते है 'विघुत' आक्रोश में आकर चण्डी रूप में कहती है-"तुम ! तुम ! तुम सभी दोषी हो। किसी ने मेरे भविष्य को पलटने से न रोका, न सँभाला। तुम हत्यारे हो, नपुंसक हो, कायर हो। मैं तो तुम्हारी सेवा में उलझी थी। भाई का क्या स्वागत? पांच वर्षों में पहली बार आया, सब नष्ट हो गया। जो मैं नहीं चाहती थी वही हो गया। मेरी कोख क्या पलटी सब नंगा हो गया। चलो, अच्छा हुआ, पाँचवाँ युग बदलकर सामने आकर खड़ा हो गया। तुम सबने मिलकर मुझे नंगा कर दिया यही समझते हैं आप, पर वास्तविकता तो यह हे कि असल में नंगी है नहीं, आप हुए हैं। कोख मेरी और भविष्य आपका लुटा है? अरे! कायर पुरुष है, तू अपना भविष्य भी न बचा सका, धिक्कार है तुम पर, तुम सब पर। तुम तो पुरुष कहलाने के भी लायक नहीं।"[240] चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की कहानी 'कमीनों की जिन्दगी में' 'बसन्ती' जो कहानी की पात्रा 'कुसुम' के घर नौकरानी का काम करती है। 'बसन्ती' अपने शराबी पति के अत्याचारों से पीड़ित है परन्तु वह अपने पति का विरोध करती है और 'कुसुम' को बताते हुए कहती है-"ऐसे पति को दूर से सलाम।" "कमाने-खिलाने को तो पति नहीं है- मारने-पीटने को बदमाशी फैलाने को पति है, मैंने तो भी आज ऐसी-ऐसी सुनाई हैं कि धोए न छूटे।"[241]

'बसन्ती' का पति जब उसे गाली-गलौच या बुरी तरह से पीटता है तो 'बसन्ती' जागरूक होकर पूरा विरोध करती है और कहती है- "हाथ लगाया तो सच कहती हूँ झाड़ू मारूंगी खींच के। आज तक मारा नहीं था, गाली तक ही बस थी, पर अब नहीं रूकूँगी।"[242]

ज्ञानी देवी की कहानी 'कुम्भीपाक' में 'निशा' अपने पिता द्वारा शोषण का शिकार बनती है। 'निशा' अपने प्रति हुए अन्याय को लेकर भगवान को विद्रोहात्मक चुनौती देती हुई आक्रोश प्रकट करती है- "सोचती है हे भगवान् अगर स्त्री होता तो कभी लड़कियों से उनकी माँ न छीनता या जिनकी माँ छीननी होती उनको बेटियाँ न देता। मेरे सामने भगवान आ जाए तो इस अन्याय की सजा मैं उसे जरूर देती। सुख छीनकर दु:ख देकर मुस्कराने में उसके कौन-से दम्भ की सन्तुष्टि होती है क्या जानूं? पर मर्द तो तब समझती उसे मैं, जब औरतों की तरह कष्ट पर कष्ट झेलते हुए भी यूँ ही हँसने की हिम्मत दिखाता।"[243] 'निशा' अपने पिता द्वारा किए गए अन्याय को लेकर विचलित है वह स्वयं के साथ न्याय करने में सक्षम होती है वह विद्रोह करती है। 'निशा' दरांती से अपने पिता रूपी राक्षस पर वार करके सिर धड़ से अलग कर देती है वह समाज को बताना चाहती है कि एक स्त्री अगर अपनी इज्जत बचाने के लिए जान दे सकती है तो जान ले भी सकती है और स्वयं को भी आग की लपटों को सौंपते हुए कहती है- "देखो! मैंने कलयुग के रावण को मार डाला है। मार डाला मैंने एक राक्षस को जो अपनी ही बेटी...को... हा ! हा.... वो रावण ही नहीं महारावण.... हा....हा.... महारावण था। मार डाला मैंने.... उसे मार डाला।"[244]

समाज में स्त्री-पुरुष की समानता के तहत कानून बन जाने पर भी पुरुष स्त्री को केवल इस्तेमाल करता है। उसे अपनी गुलाम बना कर रखना चाहता है। स्त्रियों के मान-सम्मान व अस्तित्व से पुरुषों का दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं है परन्तु आज स्त्री पुरुषों की घिनौनी हरकतों को भली-भांति प्रकार से जानकर सशक्त हो गई है। वह जागरूक हुई है पुरुषों के अन्याय से। मुक्ता की कहानी 'जनम दुख' में कहानी की पात्रा 'मिथिलेश' 'कैलाश यादव' द्वारा किए गए अन्याय के प्रति सचेत होती है। 'कैलाश यादव' 'मिथिलेश' के अस्तित्व को ठेस पहुँचाता है तो 'मिथिलेश' आक्रोश में आकर विरोध करती है-"मैंने तो.... प्रेम का भ्रम पाला था...

. लेकिन कैलाश यादव.... तूने मेरा सौदा किया.... मेरी आह लगेगी तुझे.... तेरे शरीर में कीड़े पड़ेंगे..."[245]

आज समाज में स्त्री घरेलू से कामकाजी होती हुई जीवन के यथार्थ को अच्छी तरह से पहचानती है। वर्तमान में स्त्री कामकाजी है। घर की चारदीवारी से बाहर निकल अपने अस्तित्व को पहचान रही है। मार्ग में कामकाजी स्त्रियों के प्रति उत्पीड़न का विरोध अल्पना मिश्र की कहानी 'मुक्ति-प्रसंग' में देखा जा सकता है। कहानी की पात्रा नौकरी करने पर आने-जाने वाली असुविधाओं व अन्याय के प्रति सचेत है। वह पुरुषवादी सोच का विरोध करती हुई कहती है-"क्या समझ रखा है? जिसकी बगल में बैठो, उसी का अनन्त जिज्ञासाएँ जाग जाती है। पूछना शुरू हो जाता है-कहाँ जाएँगी, कब लौटेंगी? आपकी बीवियाँ नौकरी नहीं करतीं? कहीं आती-जातीं नहीं? दूसरे लोग उनके साथ ऐसा ही व्यवहार करते होंगे, कभी सोचा आप लोगों ने."[246]

समाज के अंदर महिला आज घुटन व प्रताड़ना से उभर कर अपने अस्तित्व व अस्मिता के संघर्ष के प्रति जागरूक है। रत्न कुमार सांभरिया की कहानी 'राईट टाईम' में महिला के पास टिकट नहीं होता है तो एक दंपति द्वारा कहानी की पात्रा को अपमानित व प्रताड़ित किया जाता है क्योंकि वह ट्रेन में सीट पर बैठी होती है। वह अपने प्रति हुए अपमान का बदला लेती है और हक के लिए विरोध करती है- "भाई साहब, सुना नहीं आपने, सीट छोड़ दो मेरी।"

"कौन सी सीट?"

"आपकी जगह मैं बैठी थी, न।"

"मतलब।"

"टिकट ले आई हूँ न, मैं।"[247]

ज्ञान प्रकाश विवेक की कहानी 'यात्रा' में कहानी की पात्रा ट्रेन में सफल करते हुए पुरुषों से अपने हक के लिए विरोध करती है। ट्रेन में पुरुष समूह बनाकर ताश खेल रहे होते है। सीट पर बैठने के लिए बुजुर्ग व्यक्ति को रास्ता नहीं देते है। स्त्री पर अपने शारीरिक बल के साथ-साथ पुरुष मानसिकता झाड़ते हुए कहते है-"के समजे है तू? एक मिनट में आदमी को साँस खींच लूँ। दो घूँसें मारूँ तो माँणस पाणी नी माँगता। के चीज से तूँ?" पुरुषों की बातें सुनकर कहानी पात्रा को

गुस्सा आता है, स्त्री सुशिक्षित व जागरूक है वह पूरा विरोध करती हुई कहती है- "खूब मर्द लोग हो। एक स्त्री पर कई सारे मिलकर हमला करोगे।"[248] मुक्ता की कहानी 'उस शहर के नाम' की नायिका 'मधु' अनेक संघर्षों के साथ बी०ए० की पढ़ाई पूरी करने के बाद कथक की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करती है। 'खुजराहो संगीत समारोह के अंतर्गत 'मधु' को 'सेठ दरबारीचन्द अन्ध विद्यालय' का आमन्त्रण मिलता है। आमंत्रण के दौरान विद्यालय में हो रहे अन्याय से 'मधु' परिचित हो जाती है और सशक्त होकर पूरा विरोध करती है- "जी हां.... मैं बहिष्कार कर रही हूँ।"

"क्यों... क्या कारण बताएँगी?"

"पूँजी और पूँजीपतियों के इस खेल में कलाकारों का क्या काम? अन्धविद्यालय के नाम पर मिलने वाला अनुदान सेठ, मन्त्री और अफसरों की तिजोरी भर रहा है। मैं पूछती हूँ कहाँ हैं वे नेत्रहीन बच्चे जिनके नाम पर हमें बुलाया जाता है? हर वर्ष कलाकार बच्चों के नाम पर बिना पारिश्रमिक लिये आते हैं। बच्चों की खुशहाली के लिए, उनके विकास के लिए आते हैं। लाखों रुपये के अनुदान की घोषणा होती है। कहाँ हो रहा है विकास?"

"ऐसा तो नहीं है, कुछ काम तो हो ही रहा है।"

"अच्छा आपको लगता है काम हो रहा है... तो फिर... विद्यालय की इमारत इतनी टूटी जर्जर क्यों है? कहाँ जाते हैं पैसे? बच्चों को समारोह में आने से भी रोका जाता है। कितने अध्यापक हैं विद्यालय में? कैसा भोजन? कैसी शिक्षा?... मैं सब समझ रही हूँ। मेरा बचपन इसी शहर में बीता है... बाल-मन पर लगी चोट उम्र भर कसकती है... आप मेरी बात छाप दीजिए... इस मंच से कला का अपमान हो रहा है और कलाकार को इस्तेमाल किया जा रहा है। कलाकार होने के नाते मैं इसे बर्दाशत नहीं कर सकती हूँ। मैं स्वयं बहिष्कार कर रही हूँ और संगीतकारों से अपील कर रही हूँ कि ऐसे आयोजनों का बहिष्कार करें।"[249]

मन्नू भंडारी स्त्रियों को जाग्रति समाज में उनकी एक स्वतंत्र पहचान व अस्तित्व को लेकर 'अपनी अस्मिता का बोध' के अंतर्गत स्त्री संघर्ष को व्यक्त करती हुई कथन की प्रस्तुति देती है- "हमारी पीढ़ी की स्त्री ने संघर्ष के लम्बे दौर से गुजरकर पहली बार अपना नाम हासिल किया। यानी अपनी एक स्वतंत्र पहचान,

अपनी अस्मिता का बोध। रिश्ते आज भी हैं, लेकिन रिश्ते और अस्मिता की टक्कर के परिणामस्वरूप अब उनके नए समीकरण तलाशें जा रहे हैं, उनका स्वरूप बदल रहा है। हमारी पीढ़ी के बहुत सारे साहित्य में इस तलाश की जद्दोजहद के, संघर्ष के स्वर सुनाई देंगे। हमारी पीढ़ी ने अपनी एक स्वतंत्र पहचान ही नहीं बनायी, समाज को उसका अहसास भी कराया।"[250]

वर्तमान में स्त्रियों के वैचारिक परिवर्तन आने से काफी बदलाव आया है। आज नारी पुरुषों के हाथों की कठपुतलियां नहीं है। समाज में सदैव पुरुष की मानसिकता यह है कि स्त्री उनकी छत्रछाया में रहकर अपने जीवन का निर्वाह करती है। स्त्री की इच्छाएं, खुशियाँ कुछ मायने नहीं रखती है। अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'घरौंदे की तलाश' में 'सरूचि' पति द्वारा प्रताड़ित है। 'सुरूचि' को उसका पति परिवार में अहमियत प्रदान नहीं करता है। 'सुरूचि' तंग आकर अपनी पति की शिकायत नारी कल्याण केन्द्र में कर देती है कि वह अपनी सास और पति से परेशान है और विरोध करती हुई संचालिका को कहती है-"उनका बेटा जहाँ मुँह मारे कोई बात नहीं क्योंकि वह मर्द है। क्या औरत को रोटी, कपड़ा और मकान ही चाहिए या सिर्फ पत्नी को औलाद-सुख देकर ही पति के कर्त्तव्य की इति-श्री हो जाती है?"[251] जया जादवानी की कहानी 'जब पेड़ों से पत्ते गिरते हैं' में कहानी की पात्रा अपने पति के वर्चस्व से पीड़ित है। इस कहानी में भी स्त्री अपने विचारों को सशक्त व जागरूक करती हुई समाज को बताती है- "औरत सभी को सुख देती है- देह का सुख, मन का सुख। पर बदले में उसे क्या मिलता है- थोड़ी-सी रोटी... थोड़ी-सी दया।" 'निक्की' जागरूक होकर अपनी मां से कहती है "क्यूँ लेती हो थोड़ी-सी रोटी... थोड़ी-सी दया...।"[252] 'घरौंदे की तलाश' में कहानी की नायिका 'सुरुचि' को नारी कल्याण केन्द्र की संचालिका नारी जाग्रति व सशक्त रूप के बारे में बताती हुई कहती है- "नारी-जागृति के इस युग में औरत को अपनी शक्ति का अहसास हो गया है और वह स्व-अस्तित्व को बचाए रखने के लिए कमर कस कर खड़ी है तथा लड़ रही है। जहां नारी लड़ी वहीं पुरुष-अहं आहत हुआ। फिर वह कहीं उसका चंडी का रूप देखकर अपनी हरकतों से बाज आ गया तो कहीं अपने बाहुबल का प्रयोग कर उसे दबाने के प्रयास में अपना घर तोड़

बैठा। सारी उम्र अकेला किल्लस कर जीने की राह चुनी पर बाहर से मजबूत दिखने का दिखावा करता रहा। वाह रे ईश्वर। तूने कैसा नारियल-सा पुरुष बनाया।"[253]

वर्तमान में कन्या भ्रूण हत्या के मामले में भी कहीं न कहीं स्त्री जागरूक हुई है कि बेटी को जन्म देने में कोई बुराई नहीं है। मृदुला गर्ग की कहानी 'तीन किलों की छोरी' में 'शारदाबेन' अपनी पुत्री को जन्म देकर खुश है 'शारदाबेन' कहती है-"चल मेरी तीन किल्लो की छोरी, सूकड़ी तो खिलवा दे।" अरे, छोरी हुई तो क्या हुआ, कहती नहीं अपनी मोटीबेन।" कहानी में 'मोटीबेन' 'शारदाबेन' को जागरूक करती हुई कहती है- छोरी-छोरा में अब फरक नहीं रहा। देख न शारदाबेन, मैं भी तो छोरी हूँ पर पूरा का पूरा फांउडेशन मेरे दम पर चला है। है कि नहीं?"[254] समाज में स्त्रियों के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव करना कानून के खिलाफ है। एस०आर० हरनोट की कहानी 'चीखें' में 'रामकी' उर्फ 'रामो' को पहले से एक बेटी है परन्तु 'रामो' बेटा-बेटी में कोई फर्क नहीं समझती है। लेकिन उसका पति पुत्र प्राप्ति के लिए न जाने कितनी मन्नतें मांगता है और अपनी पत्नी को समझाता है कि उसे बेटा ही होगा। 'रामो' अपने पति के व्यवहार से तंग आ जाती है। अंत में उसे चाँद सी बेटी होती है, 'रामो' की खुशी को ठिकाना नहीं रहता है। फिर उसे अपने पति का ख्याल आता है कि बेटे की चाह में उसने हजारों मन्नतें मांगी है। 'रामो' जागरूक होकर अन्याय के विरूद्ध लड़ती है। 'रामो' नर्स को अपने गले का मंगल सूत्र अपनी बेटी की खुशी में दान कर देती है।

समाज में आज भी स्त्री के लिए कई मर्यादाएं ज्यों की त्यों बनी हुई है सिर्फ स्त्री के लिए। आज भी गांव और शहरों दोनों जगह पर पर्दा प्रथा समाप्त नहीं हुई है। भले ही पर्दा प्रथा का अंत हुए कितने वर्ष बीत चुके है। परंपराओं की जकड़न स्त्री धीरे-धीरे स्वयं ही तोड़ रही है वह शिक्षित होकर एवं जागरूक होकर अन्धविश्वासों के तहत अपने आपको बाहर निकाल रही है। सुरेखा सिन्हा की कहानी 'प्रिया' की नायिका 'प्रिया' शिक्षित, सशक्त एवं जागरूक है। विवाह के पश्चात् 'प्रिया' को उसके ससुराल वाले पर्दा अर्थात् घूँघट करने के लिए बार-बार कहते है क्योंकि उनके घर में पर्दा प्रथा है। 'प्रिया' के न मानने पर 'प्रिया' की प्राचार्या को बुलाने उसे समझाने के लिए बुलाया जाता है परन्तु 'प्रिया' जाग्रत होकर अपनी प्राचार्या को भी निडरपूर्वक कहती है-"आपने ही बड़ों का सम्मान करना व

पर्दा प्रथा का विरोध करना सिखाया है। मैं आप ही के पद-चिह्नों पर चल रही हूँ। अत: मुझे आप मत रोकिये। मैंने कोई गलत काम नहीं किया।"[255] 'प्रिया' पर्दा प्रथा के विरूद्ध संघर्षशील व सशक्त है। समाज में स्त्री आज शिक्षा से जागरूक होकर अपने अधिकारों को पहचान गई है। स्त्री हर हालत में न्याय पाने के लिए जागरूक है। वह समाज में परिवर्तन ला रही है। स्त्री शिक्षा के प्रति सशक्त होकर विरोध कर रही है।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानी 'कालकी गोरकी' में 'कालकी गोरकी' दो लड़कियों समझदार व जागरूक है। दोनों बहने अपने पिता की मृत्यु के बाद अपनी माँ 'नीमकी' के साथ रहती है। एक दिन 'ठाकुर पवन सिंह' कुछ कागजात लेकर खेत हड़पने के लिए 'नीमकी' से अगूँठा लगवाने आता है और कहता है- "ठकुराणी जी ! इन कागजों पर अँगूठा लगा दीजिए।"

"क्यों?"

"अपने खेत में कुआँ खुदवाने के लिए सरकार से कर्ज लेना है।"

'कालकी' जागरूक होकर कहती है- "काका-सा, आप हमें ये कागज दे दीजिए। मैं मास्टर जी को दिखवा कर, माँ से अँगूठा लगवा कर आपको दे दूँगी।"

"मास्टर जी को क्यों दिखाएँगी? क्या मेरा भरोसा नहीं है?"

"काका सा, हमारे बापू ने हमें अपनी माँ की जिम्मेदारी सौंपी है। पहले हम पढ़ेगी, फिर मास्टर जी को दिखाएँगी।"[256]

'ठाकुर पवन' सिंह 'कालकी' की बातें सुनकर एकदम आवेश में आ जाता है और घृणा से मास्टर को लेकर कहता है-"उस विधर्मी को उस मुसलमान हबीब को? क्या उसका भरोसा मेरे भरोसे से बेसी है?"

"काका सा, भरोसे की क्या बात है? जब कागज सही है तो इसमें आपको क्या तकलीफ है? आपका भरोसा तो बढ़ेगा ही।"

'नीमकी' अपनी बेटियों का समर्थन करती हुई कहती है-"ठाकुर सा, मेरी छोरियाँ ठीक कहती हैं। जो उन्हें अच्छा लगेगा, वे उसे ही करेंगी। आप को इसमें एतराज क्या है? मास्टर जी को दिखा कर मुझसे अगूँठा लगवा कर कागज आपको पहुँचा देंगी।"[257] 'कालकी' 'गोरकी' दोनों बहनें साहसी एवं सशक्त है उन्हें पता

चल जाता है कि 'ठाकुर पवन सिंह' उनके साथ अन्याय करने जा रहा है परन्तु वे दोनों सशक्त होकर विरोध करती है। 'गोरकी' ठाकुर को सावधान करती हुई कहती है-"हम हैं ना ठाकुर-सा, हमने सब मालूम कर लिया है आप जो कागज माँ से अंगूठा लगाने के लिए लाये थे, वे हमारे खेत हड़प जाने के ही थे। गिरदावर और तहसीलदार को भी रिश्वत देकर आपने हमारे खेतों को हड़प जाना चाहा, पर वे भी हमारी धमकियों से डर गये। आखिर हम भी तो शहीद की बेटियाँ है।" 'कालकी' आगे चेतावनी देती हुई विरोध करती है- "कल से हमारे खेत में पाँव मत रखना। अपने आदमियों से कह देना कि वे उधर देखें नहीं, वरना नतीजा बहुत बुरा होगा। जो विश्वासघात करता है, वह भी अपने मृत सम्बन्धी के साथ, उसे तो नरक में भी जगह नहीं मिलती।"[258]

समाज में स्त्री आज अन्याय के प्रति सशक्त है। इक्कीसवीं सदी की स्त्री युवा पीढ़ी अधिक सशक्त हुई है। समाज में सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए तत्पर है वे अपने परिवार से भी न्याय मांगने के लिए समर्थ है कि जिन घरों व परिवारों में स्त्री को अपनों से ही न्याय नहीं मिलता है तो वे वहां भी सशक्त व जागरूक होकर विरोध करती है। मंजु वनिता की कहानी 'फ़र्क़' में 'अपूर्वा' पढ़ाई करके वापिस घर की तरफ आ रही होती है तो रास्ते में उसे कुछ लड़कों द्वारा परेशान किया जाता है। वह सारी बात अपनी शिक्षित माँ को आकर बताती है तो रिपोर्ट दर्ज न करवाकर उसकी माँ अपने पति के कहने पर उसे यह दुर्घटना भूलने के लिए कहा जाता है-"अपूर्वा इसे दुर्घटना समझकर भूलने की कोशिश कर।" 'अपूर्वा' कहती है- "ठीक है मम्मी अगर यह दुर्घटना है तब भी तो इसकी रिपोर्ट करनी चाहिए।"[259] 'अपूर्वा' अन्याय के प्रति सशक्त होती हुई आगे विरोध करती हुई, न्याय माँगती हुई कहती है- "मैं लड़की हूँ इसलिए। अभी पिछले महीने नन्दू का एक्सीडेंट हुआ था, उसके हाथ में चोट आयी थी तो पापा ने गाड़ी वाले की रिपोर्ट भी की थी और जुर्माने के लिए केस भी। मेरे लिए कहती है मैं शान्त रहूँ, आखिर क्यों? वह सिसकने लगी। मम्मी सोचिए। जैसे वो मेरा दुपट्टा खींच कर ले गये वैसे ही अगर मुझे भी जबरदस्ती खींचकर ले जाते तब भी आप यही कहती?"[260]

अनिता गोपेश की कहानी 'बोल मेरी मछली कित्ता पानी' में भी कहानी की पात्रा 'डोली' अपने घर में ही अपने माँ-बाप के अन्याय से पीड़ित होकर विरोध करती है उसके पिता अपने फायदे के लिए चुनावों को माध्यम बनाकर अपनी बेटी का विवाह करना चाहते है। 'डॉली' की माँ का घर में कोई ध्यान नहीं होता है। 'डोली' अपने प्रति अन्याय को व्यक्त कर विरोध करती अपनी माँ से कहती है- "और तुम लोग जो करते हो, वो क्या किसी माँ-बाप को शोभा देता है? जाओ... जाओ माँ ! राजिन्दर को लेकर मन्दिर में भगवान जी के दर्शन कर आओ। जो चीजें तुम नहीं जानती उनमें सिर न खपाया करो।"[261] माता-पिता की लापरवाही से 'डाली' अन्याय के प्रति सशक्त होती है और कहती है-"और पेरेंट्स का फर्ज? वह भी तो कुछ होता है। सिर्फ जन्म दे देने से ही माँ-बाप का फर्ज पूरा हो जाता है क्या? कोई एहसान नहीं किया हमें जन्म देकर और यूँ भी आप लोगों को तो पछतावा रहा है कि हम बेटा क्यों न हुए।" विवाह को लेकर 'डॉली' सशक्त रूप से विरोध करती हुई कहती है-"उसकी चिन्ता आप करिए-आपने जो कुछ किया अब तक, सिर्फ अपने बारे में सोचकर, अपने फायदे के लिए। कभी सोचा ही नहीं कि हम क्या चाहते है। ये शादी भी कोई डील होगी आपकी। मै आपकी डील का मोहरा नहीं बनना चाहती।"[262] 'डॉली' अपने पिता की संपत्ति से अपने हिस्से को न लेने के लिए भी मना कर देती है कि उसे अपने संपत्ति से कोई पैसा नहीं चाहिए क्योंकि उसके पिता उसे संपति न देने के लिए चेतावनी देते है फिर 'डोली' अपने पिता को जवाब देती हुई कहती है-"कम ऑन पापा, किसे चाहिए आपका पैसा? मै तो सिर्फ अट्ठारह साल की होने का इन्तजार कर रही हूँ। मेरी चिन्ता छोड़िए, अब जाइए जाकर अपनी छोटी बेटी पर ध्यान दीजिए, जो घर में किसी वक्त नौकर-चाकरों की बुरी निगाह का शिकार हो सकती है और कृपया अब मुझे सोने दीजिए, बहुत थक गयी हूँ, आप लोगों की बकबक से। बाकी सारी बातें सुबह कर लीजिएगा।"[263]

उर्मिला शिरीष की कहानी 'पत्थर की लकीर' में भी 'शैला' अपनी बुआ के साथ संपत्ति में हुआ अन्याय को लेकर अपनी माँ से विरोध करती है और स्वयं के लिए न्याय की मांग करती है। 'शैला' अपनी माँ को न्याय से परिचित करवाती हुई

विरोध करती है और कहती है-"क्या गलत बोलती थी। मुझे पता है, मम्मी मेरे साथ भी तुम और बण्टी यही सब करोगे जो बुआ के साथ किया।"

"ऐसा क्या किया बुआ के साथ, बोलो। सबका अपना-अपना भाग्य होता है। उन्होंने कभी बात मानी।"

"मैं इस घर की बेटी हूँ। वे दादा जी की बेटी है। जब एक बेटी को नहीं समझा गया तो दूसरी को क्या।"

"तुम्हारे अन्दर वह ऐसा जहर भर गयी है कि..."

"दूसरों को रिस्पेक्ट देना सीखो मम्मी।"[264]

आज समाज में स्त्री शिक्षा के कारण आत्मविश्वास एवं जागरूकता से सशक्त है अपनी जिज्ञासा प्रवृति के कारण भी संघर्षशील है। न्याय को पाने के लिए सक्षम है। आशालता सिंह स्त्री के संघर्ष को लेकर अपने विचार व्यक्त करती हुई कहती है-"इक्कीसवीं सदी में नारी को अपने अधिकार मांगने की नहीं, बल्कि अर्जित करने की जरूरत है। नारी की वास्तविक संपत्ति उसका अर्जित अधिकार है, जिसे कोई छीन नहीं सकता।"[265]

समाज में नारी अपने कार्य के प्रति सशक्त है। कविता की कहानी 'तमाशा' में कहानी की पात्रा 'तमाशा' नर्तकी बनने पर मजबूर है। वह अपनी पारिवारिक जिम्मेंदारियों के कारण नर्तकी बनने पर विवश है। 'नीला' अपने कार्य के प्रति शर्मिंदा नहीं है बल्कि जागरूक है। वह सोचती है-"वे औरतें, जो अपने परिवार की जिम्मेवारियों की खातिर इस पेशे में आई, भ्रष्ट कैसे हो सकती है; और फिर इन लोगों को यह अधिकार दे दिया तो किसने कि ये तय करें कि कौन भ्रष्ट है और कौन पवित्र? नहीं, उसने कुछ भी गलत नहीं किया। वो ऐसे लोगों की हरकतों को मन से कैसे लगा सकती है। वह किसी के आगे झुकेगी-डरेगी नहीं।"[266] स्त्रियों को ही समाज में अन्याय का शिकार बनाया जाता है जिससे स्त्री उस अन्याय को ही समाप्त करके समाज को बदलना चाहती है। नीला प्रसाद की कहानी 'एक जुलूस के साथ-साथ' में कहानी की पात्रा 'लता' कॉलेज में वार्डन द्वारा वेश्यावृत्ति के प्रति सशक्त व जागरूक होती है और इस अन्याय को जड़ से खत्म कर देना चाहती है। कॉलेज की अन्य छात्रा 'अंजलि' अन्य छात्राओं को बताती है-"जी॰ वी॰ दक्षित भारतीय है, कुंवारी हैं और कच्ची-ताजी युवतियाँ प्रौढ़ों के पास पहुँचा, तगड़ा

कमीशन कमाती हैं। वे इन पैसों का क्या करती है, यह किसी को नहीं मालूम।"[267]

सभी छात्राएं 'लता' का इस घिनौने कार्य के अन्याय को समाप्त करने में सशक्त होती है। सभी धरने पर बैठ कर जम कर विरोध करती है। 'लता' छात्राओं के सहयोग से प्रिंसिपल, डीन और वी०सी० के नाम 'जी०वी०' की शिकायत दर्ज करती है। सभी लड़कियां झुंड बनाकर उत्सुकता से नारे लगाते हुए विरोध करती है-"जी०वी० को सस्पेंड करो", "पी० प्रभा होश में आओ", "लड़कियों के भविष्य से खिलवाड़ बन्द करो", "छात्राओं का सस्पेंशन वापस लो", "कॉलेज प्रशासन मुर्दाबाद", "पी० प्रभा हाय-हाय", "जी०वी० वेश्या है", "देह-व्यापार की आयोजक को संरक्षण देना बन्द रखो..."[268] 'लता' व अन्य छात्राओं के प्रयत्नों व लम्बे संघर्ष के बाद अंत में न्याय मिल जाता है। 'जी०वी०' को डिसमिस कर दिया जाता है। कॉलेज में पूरे जश्न से आयोजन किया जाता है।

आज समाज में स्त्री विवाह के प्रति भी सशक्त हुई है। भारतीय संविधान द्वारा दिये गए अधिकार एवं सामाजिक न्याय की अवधारणा के तहत न्याय प्रदान करने में सचेत है। भारतीय संविधान में विवाह सम्बन्धी कानून व दहेज उन्मूलन अधिनियम की जानकारी रखती हुई स्त्री आज सचेत है। वह कानून व्यवस्था में अधिनियमों का प्रयोग करके सामाजिक न्याय प्राप्त करती है एवं समाज को भी परिवर्तित करना चाहती है और कर रही है। इन्दु बाली की कहानी 'नहीं माँ, नहीं में' 'शिवांगी' अपनी सहेली को विवाह के प्रति सशक्त करती है कि शादी तुम्हें करनी है तुम्हारे माँ-बाप ने नहीं। 'शिवांगी' विवाह के प्रति जागरूक एवं संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों के प्रति सशक्त करते हुए कहती है- "अरे ! किस बात में कम हो तुम पुरुषों से। क्यों दबती हो, क्यों डरती है? तुम पुरुष की दासी नहीं प्रिया हो बल्कि उसके समान ही। समानाधिकार को सुरक्षित रखो और अपने मन से जिओ। तुम क्यों दबती हो, क्यों अधिकार छीनने देती हो? देखो, मेरी मानो, कह दो सबसे, यह तुम्हारा जीवन है, तुम जैसा चाहोगी वैसा ही जिओगी भी। फिर इसमें बुरा क्या है, शादी ही करना चाहती हो, भागना तो नहीं। भागना भी पड़ता तो मैं तो हेमन्त के साथ भाग ही जाती, तुम भी ऐसा करो। क्यों बिन मौत करना चाहती हो?"[269]

सुभाष नीरव की कहानी 'औरत होने का गुनाह' में कहानी की नायिका 'सुनीता' 'जावेद' से विवाह करने का फैसला लेती है और 'जावेद' की वजह से ही 'सुनीता' को अपने पहले पति से तीन साल में जाकर तलाक मिलता है। 'सुनीता' को अपने पिछले दु:खमय जीवन से मुक्ति मिलती है तो उसके पिता, भाई सभी परिवार वाले विवाह करने से मना करते है तो 'सुनीता' अपने परिवार का विरोध करती हुई कहती है-"आप लोग मेरी चिंता छोड़ दें। मैंने और जावेद में खूब सोच-समझकर ही फैसला लिया है। आप लोग तो पिछले चार सालों से मुझसे सारे संबंध खत्म किए हुए हैं। मैं तो आपके लिए कब की मर चुकी हूँ। पिता ने बेटी, भाईयों ने बहन को मरा समझकर इन चार वर्षों में एक बार भी सुध नहीं ली। फिर आज ये मृत संबंध एकाएक कैसे जीवित हो उठे? जावेद और मैं शादी करके रहेंगे। ऐसा करने से हमें कोई नहीं रोक सकता।"[270] 'कालकी गोरकी' कहानी में भी कहानी की पात्रा दोनों 'कालकी' 'गोरकी' गाँव की 'कुलसुम' जो विवाह के बाद ससुराल पक्ष से बहुत पीड़ित है उसे मारा-पीटा जाता है। 'कुलसुम' का भाई 'हुसैन' अपनी बहन के प्रति हो रहे अन्याय को 'कालकी' 'गोरकी' को बताता है। जब 'कुलसुम' के ससुराल वाले फिर से उसे लेने आते है तो 'गोरकी' उन्हें स्पष्ट चेतावनी देती हुए अन्याय का विरोध करती है- "ये लाठियों का डर जनखों को दिखाना। यह सैनिकों का गाँव है। जिन पाँव से आये हो, उन्हीं पाँव से लौट जाओ। हमारी एक पुकार पर गाँव से लाठियाँ और बन्दूकें निकल आएँगी।"

'कालकी' आक्रोश में आकर आगे कहती है- "बेसी है तो कुलसम को तलाक दे दो। इस फूटरीफरी छोरी के लिए कितने ही बींद (दूल्हे) मिल जायेंगे। चुपचाप रास्ता नापो।"[271] 'कालकी' 'गोरकी' अपने विवाह के प्रति भी सशक्त व जागरूक होती है। 'कालकी' का दूल्हा विवाह करने से मना कर देता है क्योंकि वह काली है। दोनों बहनों को गुस्सा आ जाता है। 'गोरकी' आक्रोश में आकर कहती है- "क्या काली छोरियों के गाँव अलग बसते हैं? क्या काली छोरियाँ कुँवारी ही मरती हैं? इस गाँव में अनेक काली लुगाइयाँ हैं और अब विवाहिता है। कान खोल कर सुन लीजिए और आप अपनी बारात लेकर वापस चले जाइए। हम ऐसे लड़कों से ब्याह नहीं करेंगी जो रंग-रूप की जगह लड़की के गुण नहीं देखते। जाइए, अपना काला मुँह लेकर जाइए।" 'कालकी' भी गुस्से से चीख कर कहती

है- "ये निठल्ले खुद अपनी शक्ल नहीं देखते। एक तो हनुमान जी सा लगता है। जाइए-जाइए। हम इनसे शादी नहीं करेंगी।"[272]

भानु प्रताप कुठियाला की कहानी 'क्या होगा माधुरी का' में भी इसी प्रकार से 'माधुरी' भी विवाह के प्रति अन्याय को लेकर जागरूक है वह भी अन्याय के प्रति डट कर विरोध करती है। 'माधुरी' गुस्से में दहेज लोभियों को कहती है-"बहुत हो चुका, चुप रहिए। मैं सांवली हूँ, मेरी उमर ज्यादा है, मोहित से बड़ी लगती हूँ, मेरे मम्मी-पापा भीखमंगे हैं, नहीं करनी मुझे यह शादी। क्या बेटियां नुमाइश की चीज हैं, जिसे जब चाहा पहले दुलारा, फिर फटकारा, निकल जाओ यहां से, फिर कभी इस घर में कदम न रखना और मम्मी के चाचा से कह देना कि माधुरी बिका नहीं है। वह भेड़-बकरी नहीं है। तुम्हारे जैसी औरतें अपनी पतियों का अपमान सरेआम करती है। तुम्हारे घर में बेटी नहीं है इसीलिए तो तुम जैसी औरतें दूसरों की बेटियों का अपमान करती हैं, उनका सौदा करती है, उनके मां-बाप को तरह-तरह के ताने देती हैं। अपने बेटों को बाजार में बिठाती हैं, और मोहित तुम भी एक बात मेरी सुनकर जाना, मां-बाप के कहने पर बाजार में बैठ जाना, खूब सौदा करेंगे वह तुम्हारा।"[273]

समाज में विवाह के पश्चात दहेज के लिए भी स्त्री पर अन्याय होता है परंतु वर्तमान में स्त्री शिक्षित व संविधान द्वारा बनाये गए कानून के प्रति जागरूक भी है। यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानी 'घरौंदा नहीं, घर' में नायिका 'सरोजा' विवाह के बाद ससुराल पक्ष के अन्याय के प्रति सशक्त है। 'सरोजा' पढ़-लिख कर शिक्षा के कारण जाग्रत है। 'सरोजा' अपने पति को आक्रोश में आकर तीखे स्वर में कहती है- "पूरो एक बरस हो गया है, इस यातना घर की यंत्रणाओं को सहते-सहते। स्त्री का पीहर घर होता है और ससुराल मन्दिर, पर आपने मेरे मन्दिर को नरक बना दिया। हर बात की हद होती है, हद के बाहर कुछ भी नहीं सहा जाता। आप मर्यादा में आ जायें और अपने माँ-बाप को भी समझा दें। मैं अँगूठा छाप नहीं हूँ। बी॰ कॉम हूँ।"[274]

'सरोजा' अपने पति के अत्याचार व अन्याय का विरोध करती है। ससुराल में उसे पीड़ित किया जाता है कि अब वह अन्याय को सहन नहीं कर सकती है। 'सरोजा' अपने स्पष्ट शब्दों में विद्रोह करते हुए कहती है- "पत्नी सदा सहन करती

है कि घर का नंगापन बाहर न जाये आप तो अन्याय पर अन्याय कर रहे हैं। सुनिये, मैं तीन दिनों की मोहल्लत देती हूँ, फिर मैं अदालत के दरवाजे खटखटाऊँगी।"[275] 'सरोजा' की सास 'सरोजा' को जला कर मारने की धमकी देती है तो 'सरोजा' का धैर्य टूट जाता है तो अपनी सास को चेतावनी देती हुई विषाक्त स्वर में कहती है-"सासू माँ ! कहीं इतिहास न बदल जाये। आज तक बहुएँ ही जली हैं, कहीं ऐसा न हो अब सास का नम्बर आ जाये। मैं आज ही यह छोड़कर जा रही हूँ। अब यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं। मैंने पढ़ा है कि कई बार शत्रु अचानक हमला करके अपने विपक्षी को मार डालता है। ध्यान दीजिए, मेरे दहेज का सामान और नकदी मेरे घर पहुँचा दीजिए तो ठीक रहेगा, वर्ना कानून तो है ही।"[276] आज की शिक्षित व सशक्त स्त्री पुरुषों की गुलाम व दया की पात्र नहीं है वह स्वयं अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकती है। समाज में स्त्री पुरुषों के अधीन रहकर जीवन भर अन्याय सहने के पक्ष में नहीं है। 'सरोजा' अपने प्रति हुए अन्याय को लेकर न्याय प्राप्त करती है और अपने पति को अंतिम चेतावनी व अन्याय के प्रति सुझाव देती हुई कहती है-"मैं जानती हूँ। सात हजार रुपये कमाने वाली मैं दुधारू गाय जो अब हो गयी हूँ। एक बार सुनो, मैं उन विवाहिताओं में नहीं हूँ जो बार-बार ससुराल से निकाली जाती हैं और बार-बार अनुराधों पर आती हैं। मैं थूक कर नहीं चाटती हूँ, समझे?"[277]

समाज में चाहे महिला किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, जाति या वर्ग से संबंधित हो, हर क्षेत्र में वह कहीं न कहीं सशक्त हुई है। समाज में स्त्री अपने जीवन की भ्रामक धारणाओं के प्रति जागरूक है। वर्तमान में स्त्री पुरानी परंपराओं और अंधविश्वासों की जकड़न से बाहर निकली है। समाज में धर्म को लेकर अन्याय के प्रति भी आज स्त्री न्याय की आवाज उठा रही है। सामाजिक रूढ़ियों व अन्धविश्वासों को पूरी तरह से नकार रही है। उपरोक्त तथ्य को स्पष्ट करते हुए एस॰आर॰ हरनोट की कहानी 'मिट्टी के लोग' कहानी की पात्रा 'अमरो' अपने घर बनाने की नींव में पंडित से कोई मुहूर्त, व यंत्र पूजा नहीं करवाते है। तो गांव के पंडित 'अमरों' व उसके परिवार वालों को कहते है कि तुमने धर्म का अपमान किया है। 'अमरों' जागरूक होकर पंडितों के अंधविश्वास को नकारात्मक मानते हुए जवाब देती हुई कहती है- "दादा! घर हम बना रहे है और तोहीन आप लोगों की

हुई है। ये बातें जची नहीं कुछ। रही साइत-मुहूर्त की बात तो दादा आप तो बड़े पंडत है। जरा बताना तो कि आज तक जिन भगवानों और देवताओं की आप पूजा करते करवाते आए हैं, उन्हें आपने कितनी बार देखा है?"[278] 'अमरो' परंपराओं व अंधविश्वास को महत्त्व न देकर अपनी बात को गांव के पंडित से शिष्टतापूर्वक रखती है और आगे कहती है- "दादा ! ऐसा भी नहीं है कि हमने बिना मुहूर्त और पूजा वगैरह के ही घर का काम शुरू कर दिया। पहली बात तो दादा यह है कि हम ठहरे गरीब लोग। साइत मुहूर्त होते हैं बड़ी हवेलियों के जहां बीस-तीस कमरे हों और फिर घर भी पक्का हो। हमारा तो मिट्टी का मटकंधा है दादा। बस यूं समझ लो कि सिर ढकने के लिए छोटी-सी छत। इसके लिए क्या पूजा और क्या पाठ ! पर हमने तो उस देवता-भगवान को अपने काम के लिए साक्षी बनाया है जो हमारी मेहनत की कद्र करता है और सदा हमारे साथ रहता है।"[279]

'अमरो' सशक्त होकर भगवान में विश्वास रखते हुए न्याय की बात पूरे गांव के सामने रखती है कि धार्मिक कर्मकाण्डों व पाखण्डों में विश्वास करके कुछ हासिल नहीं होता है। ईश्वर में सच्ची श्रद्धा व विश्वास होना चाहिए वह आगे अपने संस्कारों व विचारों को व्यक्त करती हुई कहती है-"इस तरह हैरान होने की बात नहीं है। आप भी तो सूरज को देवता और भगवान मानते हो न। उसके लिए न कोई नीच है और न ऊँचा। न अमीर है न गरीब। बिना हिचक सभी के पास आता-जाता है। सोचो तो जरा, अगर सूरज न हो तो न दुनिया में हम रहेंगे न वे देवता-भगवान जिनकी आप पूजा करते रहते हैं। बस, हमने उसे ही साक्षी मान कर सुबह की शुभ बेला में काम लगा दिया।"[280]

हमारे समाज में महिलाओं को बल, बुद्धि व्यवहार में पुरुषों की अपेक्षा निम्न स्तर पर माना जाता है परंतु आज शिक्षा व विवेक के आधार पर जागरूक स्त्री हर क्षेत्र में विकसित है और अपने परिवार व समाज को नई दिशा प्रदान कर स्वयं की स्थिति में भी सुधारात्मक परिवर्तन ला रही है। जया जादवानी की कहानी 'तिश्नगी' में कहानी की पात्रा को उसकी इच्छा के विपरीत परिवार वाले उसे राधा-स्वामी का सत्संग दिलाने के लिए ब्यास लेकर जाते है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री अपने आत्मविश्वास व जिज्ञासा प्रवृति के कारण सही अर्थों की तलाश कर न्याय पाने के लिए उत्साहित है। कहानी के अंतर्गत पात्रा को पूछा जाता है -

"बेटे, आप 'नाम' क्यूँ लेना चाहते हैं?"

"मैं यह रहस्य जानना चाहती हूँ।"

"यह कोई 'रहस्य' नहीं है। आपको जपना पड़ेगा।"

"यह आप मुझ पर छोड़ दीजिए।"

"मेरा ख्याल है आप रूक जाएँ, समझे इस पंथ को। कुछेक बार आएँ, तब फैसला करें?"

"सारे फैसले मैंने लम्हों में किए है, अगर इसे आप बड़ा फैसला मानते हैं तो मुझे 'महाराज जी' से मिलवा दीजिए। वैसे मैं किसी और रास्ते से भी उन तक पहुँच सकती हूँ, पर मैं किसी को परेशान नहीं करना चाहती, आप यह काम कर दे।"

"उनसे नहीं मिला जा सकता।"

"क्यूँ? फारनर्स से तो मिलते हैं वो। उनके लिए अलग सत्संग होता है, इंग्लिश में....। उनकी रिहाइश अलग, उनके लिए खास सुविधाएँ, सत्संग में भी उनके बैठने की व्यवस्था अलग...। हमारे लिए क्यूँ नहीं?"[281]

जया जादवानी की अन्य कहानी 'मुक्ति' में भी कहानी की पात्रा इसी तरह धर्म को लेकर अन्याय के प्रति जागरूक है। वह भी कहानी में महात्मा जी से स्पष्टवादिता होकर अन्याय के विरूद्ध विरोध करती हुई कहती है -

"आप मानव को जो ईश्वर-प्रेम का रास्ता दिखा रहे है।- यह एकदम से कैसे मुमकिन है? अगर मानव मानव से प्रेम नहीं करता तो यह किस तरह सम्भव है कि यह यकायक ईश्वर से प्रेम करने लगे? यह ढोंग है? आप पहले मानव को मानव से प्रेम करना सिखाएँ। दुनिया में इतना झूठ, इतनी नफरत, इतना अन्याय है और आप किस तरह उस सबसे पलायन कर यहाँ आ बैठे हैं? आप बाहर निकलें, मैं आपको बताती हूँ, कर्म-प्रधान जीवन में ईश्वर से रूबरू किस तरह हुआ जाता है।"[282]

'तिश्नगी' कहानी की नायिका भी धार्मिक दृष्टिकोण से सशक्त होकर अपने आप से प्रश्न करती हुई कहती है-"किससे मुक्ति? किसलिए मुक्ति? क्या हम खुद अपने अच्छे और बुरे के निर्णायक नहीं हो सकते हैं? क्या हमारी इच्छाशक्ति हममें इच्छित परिवर्तन लाने में असमर्थ है?"[283]

'मुक्ति' कहानी की नायिका भी महात्मा जी से न्याय के प्रति जागरूक करती हुई प्रश्न कहती है-"मुझे समझ में नहीं आता, जिसका स्वयं से परिचय नहीं है, उसका ईश्वर से किस तरह हो सकता है? हर आदमी यहाँ अपने-आप से अपरिचित है? आप क्या समझते हैं यहां जो हजारों श्रद्धालु पापों को धोने के ख्याल से आते हैं, फिर वापस जाकर कौन-सी कमीनगी नहीं करते होंगे?" [284] फिर-फिर लौटेगा' कहानी में भी 'तनु' का पति जो अपने घर-परिवार को त्याग कर मोक्ष प्राप्ति के लिए इधर-उधर भटकता रहता है। अपने परिवार वालों के साथ अन्याय करता है तो उसकी पत्नी 'तनु' धार्मिक दृष्टिकोण के अन्याय के खिलाफ अपने पति का विरोध करती हुई कहती है-"तू बहुत बड़ा स्वामी हो गया है न। जिन प्रश्नों के उत्तर के लिए तू भटका करता था, उनके उत्तर मिल गए होंगे। आज मेरे एक सवाल का जवाब भी देता जा तुम लोग औरत को हमेशा एक रोड़ा क्यूँ समझते हो? संसार में उसे साथ लेकर चलने में सार्थकता पाते हो। जब संसार से विचलित हुए तो सबसे पहले उसे छोड़ा। पूछ सकती हूँ क्यूँ? औरत क्या सिर्फ सोने के काम आती है? तुम्हारे देवपुरुषों ने औरत जब तक चाही, साथ रखी, फिर अनचाही समझ किनारा कर लिया। हम नींव के पत्थर हैं तरुण जिन पर तुम्हारे भवन खड़े हैं। जिस कोख पर पैर रखकर खड़े होते हो तुम, उसी को उजाड़ते हो-यही कहता है तुम्हारा धर्म?" [285] कहानी में 'तनु' का पति 'तरुण' जब अपने परिवार को छोड़कर कई वर्षों के बाद आता है तो उसकी पत्नी उसे धार्मिक अन्याय के प्रति सचेत करती है कि उसने परिवार, घर और स्वयं के साथ अन्याय किया है। 'तनु' अपने पति को दोबारा से रोकना नहीं चाहती है क्योंकि वह फिर से धर्म की तलाश में बाहर निकल पड़ता है। 'तनु' अपने पति तरुण से न्याय की माँग न करते हुए उसे अन्याय के प्रति जागरूक करती हुई कहती है- "जानती हूँ, तू जाने के लिए आया है। जा, मैं तुझे शाप नहीं दूँगी। पर जिस तरह तूने मुझ पर जीवन का भार डाला है, तुझ पर भी कोई न कोई भार होगा ही। तू मुक्त नहीं हो सकता। मैं तो फिर भी तुझसे कम निर्दयी हूँ। जिस बोझ से तू घबराकर भागा, उसे मैं सहजता से उठाने चली बोझ तो तेरा था न वह। तू नश्वर इन्सान को अनश्वर बनाने वाला और मेरे दुखों को अनश्वर कर गया। नहीं मैं तेरा पल्ला पकड़कर तुझसे न्याय नहीं मागूँगी। जो अपने लिए न्याय न कर सका, वह मेरे लिए

न्याय क्या करेगा? जिस अनश्वरता को तलाश रहा है तू, क्या तू उसे पालेगा? तू फिर-फिर लौटेगा 'और उसे फिर-फिर खोजेगा? यह एक जन्म में नहीं मिलता-जन्मों की दौड़ है यह और इसके लिए घर छोड़कर भागने की भी जरूरत नहीं। लगन पक्की हो तो कहीं भी कुछ भी हासिल कर लो।"[286]

'मुक्ति' कहानी में कहानी की पात्रा 'मनु' अपनी माँ व अन्य बहनों के साथ गुरु महाराज के आश्रम में रहती है। कहानी में पात्रा की माँ सशक्त होकर अपने बेटियों में यहां से मुक्ति दिलवा कर न्याय प्रदान करना चाहती है कि यहां उनका कुछ नहीं हो सकता तुम अपनी जिन्दगी अच्छे तरीके से स्वतन्त्र होकर जी सकती हो सकता तुम अपनी जिन्दगी अच्छे तरीके से स्वतन्त्र हो कर जी सकती हो कहानी की पात्रा 'मनु' को उसकी मां आधी रात को जगा कर कहती है-"तू भाग जा मनु, यहाँ कुछ नहीं है। कहीं कुछ नहीं है अगर मन में भटकाव हो। सारी जिन्दगी दूसरों के फैसले मानने व अपने किए पर पश्चाताप के सिवा और क्या किया है मैंने? फिर भी मरते दम तक यह सन्ताप कि मैं एक घड़ी अपनी न हुई।"

"तू भाग जा, कहीं भी.... चाहे कुछ न होगा अब, पर यह तो होगा कि तू कुछ घड़ियाँ अपने मन की जी लेगी... जा... उठ जल्दी... अपनी माँ का किया माफ कर..."[287] अपनी बेटी 'मनु' को जागरूक करती है और उससे न्याय के बारे में सोचती है और 'मनु' को कुछ रुपये देते हुए उसे स्वतंत्र करती हुई जाने के लिए कहती है- "मेरे पास इतने ही हैं, रख ले... बाहर की दुनिया पता नहीं कैसी है? और ध्यान से सुन, यहाँ की कुछ औरतें बम्बई की कुटिया में जा रही हैं? तू उनके साथ चली जा। मैंने उनसे बात कर ली है। पर बीच में किसी स्टेशन पर उतर जाना... फिर वापस इधर कभी मत आना..."[288]

मन्नू भंडारी स्त्रियों की स्थिति के प्रति अपनी विचारधारा को स्पष्ट करती हुई कहती है कि समाज में नारी सशक्त अवश्यक हुई है। "आज स्थितियाँ बदल गई है लेकिन टूटते घर-परिवार और बढ़ते तलाक की सारी जिम्मेदारी असहिष्णुता का जामा पहनकर केवल आज की लड़कियों के कन्धों पर डालना समस्या को बहुत ही सतही और एकांगी दृष्टि में देखना होगा। समस्या की जड़ तक जाने के लिए सबसे पहले उन कारणों की तलाश करनी होगी जिसने स्त्री का असहिष्णु बना दिया। क्या यह सच नहीं है कि पिछले चालीस-पचास वर्षों में स्त्री की स्थिति में

बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। शिक्षा, आर्थिक स्वतन्त्रता, अपनी अस्मिता की पहचान, बड़े-बड़े पदों का काम करने से उपजे आत्मविश्वास ने एक बिल्कुल नयी स्त्री को जन्म दिया है।"[289] इक्कीसवीं सदी में स्त्री अपने अधिकारों को पहचान गई है। आज वह अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए अपनी स्थिति में परिवर्तन ला रही है। समाज में स्त्रियों की व्यक्तिगत दशा, उनकी शिक्षा व रोजगार में परिवर्तन, कानूनी सुविधाएं तथा संरक्षण क्षमता में निरंतर वृद्धि हुई है। स्त्री संविधान द्वारा बनाए गए कानून व्यवस्था के अंतर्गत सामाजिक न्याय की अवधारणाओं को निरंतर प्रयोग में लाकर सामाजिक न्याय प्राप्त कर रही हैं।

4.3 निष्कर्ष :

भारतीय संविधान के अंतर्गत स्त्रियों को सामाजिक न्याय प्रदान करने के अनेक अधिनियम पारित किए गए है जिसके अंतर्गत भी समाज में स्त्री-पुरुष के बीच असमानता पाई जाती है जिससे समाज में महिलाओं के साथ अन्याय पैदा होता है। समाज में पितृसत्ता का वर्चस्व कायम है जिसके माध्यम से स्त्री के जन्म से ही या जन्म से पहले से ही अन्याय होना शुरू हो जाता है। समाज में फैली गम्भीर व घातक समस्या कन्याभ्रूण हत्या की है जिसमें स्त्री को पैदा ही नहीं होने दिया जाता है। उसके बाद की स्थितियों में स्त्री की शिक्षा, नौकरी, विवाह, दहेज, पुत्र प्राप्ति आदि अनेक अन्याय जीवन भर भोगने पड़ते है। भारतीय संविधान द्वारा संपत्ति का अधिकार में भी स्त्रियों को अन्याय ही मिलता है। अधिकार मांगने से परिवार में मान-सम्मान से वंचित घृणा की पात्र बनाई जाती है।

इक्कीसवीं सदी में भी स्त्री पर अत्याचार व अन्याय कायम है। पढ़-लिखकर भी स्त्री पुरुषों के अधीन है। आज स्त्री सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व शिक्षित रूप में जागरूक होकर भी पुरुषों के अन्याय की भेंट चढ़ती है। भारतीय संविधान में कानून व्यवस्था के अंतर्गत स्त्री ने अधिकारों को प्राप्त भी किया है। सच्चाई तो यह है कि वर्तमान में स्त्री को सभी कानून की सुविधाएं, उपलब्ध होने के बावजूद भी अन्याय ज्यादा है। न्याय कम मिला है। आज प्रत्येक महिला चाहे वे किसी भी वर्ग, धर्म, क्षेत्र, सम्प्रदाय व जाति से संबंधित हो वह प्रत्येक क्षेत्र में कहीं न कहीं सशक्त व जागरूक होकर अपने अधिकारों की मांग करती है। पुरुष की मानसिकता में परिवर्तन होने के बाद ही स्त्रियों की परिस्थितयों में सुधार लाया जा सकता है।

जब तक पुरुष स्त्री को बराबरी का दर्जा नहीं देंगे तब तक भारतीय संविधान की कानून व्यवस्था, सामाजिक न्याय की अवधारणा भी लिखित रूप में ही कायम रहेगी। स्त्रियां स्वयं उठ कर सशक्त होकर कितना सशक्त व जागरूक हो पाई है? हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के बावजूद भी उनका कहीं न कहीं दमन स्थापित है। समाज में स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर ही असमानता को समानता पर लाकर न्याय प्रदान कर सकते है। जिसके तहत सत्यता में ही स्त्री न्याय प्राप्त कर सकती है।

संदर्भ

1. गोपा जोशी, भारत में स्त्री असमानता, पृ॰ 23
2. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ॰ 57
3. रंजना जायसवाल, दूसरा थप्पड़, पाखी सृजन की उड़ान, पत्रिका फरवरी 2012, पृ॰ 75
4. चन्द्रभान 'राही', तलाक, बयान पत्रिका, अगस्त 2011, पृ॰ 24
5. स्वप्निल सारस्वत डॉ॰ निशांत सिंह, समाज राजनीति और महिलाएं (दशा और दिशा), पृ॰ 105
6. मुक्ता, सीढ़ियों का बाजार, पृ॰ 50
7. दीपक शर्मा, घोड़ा एक पैर, पृ॰ 43
8. सन्तोष गोयल, बुक नेस्ट तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 42
9. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 70
10. वही, पृ॰ 71
11. अमरीक सिंह 'दीप', एक कोई ओर, पृ॰ 158
12. जया जादवानी, अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है, पृ॰ 59
13. एस॰ आर॰ हरनोट, मिट्टी के लोग, पृ॰ 39
14. मुक्ता, अनुत्तरित प्रश्न, दैनिक ट्रिब्यून, समाचार पत्र, 22 जनवरी, 2012, पृ॰ 4
15. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, आज का स्त्री आंदोलन, पृ॰ 29
16. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 17
17. वही, पृ॰ 77
18. वही
19. वही, पृ॰ 78
20. वही
21. वही, पृ॰ 79
22. विनोद कालरा, फैसला, बयान पत्रिका, मार्च 2010, पृ॰ 21
23. वही
24. ज्ञानी देवी, टूटती शृंखलाएँ, पृ॰ 135
25. वही, पृ॰ 136
26. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, आज का स्त्री आंदोलन, पृ॰ 64

27. अंजु दुआ जैमिनी, इस द्वार से उस द्वार, पृ॰ 98
28. वही
29. कविता, उलटबाँसी, पृ॰ 33
30. सुरेखा सिन्हा, उस धूप की छाँह, पृ॰ 98
31. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 78
32. अमरीक सिंह 'दीप', एक कोई ओर, पृ॰ 154
33. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 20
34. वही, पृ॰ 121
35. वही, पृ॰ 35
36. वही, पृ॰ 36
37. अंजु दुआ जैमिनी, सीली दीवार, पृ॰ 109
38. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 73
39. अंजु दुआ जैमिनी, इस द्वार से उस द्वार, पृ॰ 62
40. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, आज का स्त्री आंदोलन, पृ॰ 16
41. कविता, उलटबाँसी, पृ॰ 127
42. अंजु दुआ जैमिनी, इस द्वार से उस द्वार, पृ॰ 90
43. सुधा अरोड़ा, औरत की कहानी, पृ॰ 54
44. वही, पृ॰ 55
45. सुभाव नीरव, औरत होने का गुनाह, पृ॰ 69
46. वही
47. वही, पृ॰ 70
48. वही, पृ॰ 75
49. अवधेश प्रीत, हमजमीन, पृ॰ 20
50. वही, पृ॰ 25
51. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 122
52. चन्द्रकान्ता, अब्बू ने कहा था, पृ॰ 70
53. वही, पृ॰ 70
54. वही, पृ॰ 71
55. वही, पृ॰ 73
56. स्वप्निल सारस्वत, निशात सिंह, समाज, राजनीति और महिलाएं (दशा और दिशा), पृ॰ 129
57. रेणु त्रिपाठी, महिला सशक्तिकरण वायदे और हकीकत, पृ॰ 124
58. मनीषा कुलश्रेष्ठ, कठपुतलियाँ, पृ॰ 8
59. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 122
60. विकास नारायण राय, लड़कियों का इंकलाब जिंदाबाद, पृ॰ संपादकीय बयान पत्रिका, अप्रैल 2010
61. रतिलाल शाहीन, अब्दुल जिंदा है, पृ॰ 97
62. भानु प्रताप कुठियाला, क्या होगा माधुरी का?, पृ॰ 30

63. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 122
64. मुक्ता, अनुत्तरित प्रश्न, दैनिक ट्रिब्यून, समाचार पत्र, 22 जनवरी 2012, पृ॰ 4
65. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 122
66. अनिता गोपेश, कित्ता पानी, पृ॰ 39
67. वही
68. हीरा लाल कर्दम, बहूरानी और दहेज, बयान पत्रिका, नवम्बर, 2011, पृ॰ 22
69. वही
70. वही, पृ॰ 23
71. वही, पृ॰ 39
72. वही
73. वही
74. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, आज की स्त्री आंदोलन, पृ॰ 64
75. कमलेश, कुमारी रवि, साहसी लड़की, बयान पत्रिका, सितम्बर, 2011, पृ॰ 27
76. वही, पृ॰ 28
77. वही
78. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 121
79. सुभाष नीरव, औरत होने का गुनाह, पृ॰ 73
80. वही
81. चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, सौदामिनी, पृ॰ 88
82. वही
83. वही
84. वही, पृ॰ 89
85. वही, पृ॰ 91
86. वही, पृ॰ 93
87. मैत्रयी पुष्पा, चिन्हार, पृ॰ 20
88. वही, पृ॰ 21
89. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, आज का स्त्री आंदोलन, पृ॰ 63
90. मनीषा कुलश्रेष्ठ, कठपुतलियाँ, पृ॰ 122
91. पंखुरी सिन्हा, किस्सा-ए-कोहनूर, पृ॰ 129
92. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, आज का स्त्री आंदोलन, पृ॰ 42
93. चन्द्रकिरण, सौनरेक्सा, सौदामिनी, पृ॰ 97
94. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ॰ 29
95. अरविन्द जैन, बचपन से बलात्कार, पृ॰ 117
96. सुधा अरोड़ा, औरत की कहानी, पृ॰ 88
97. स्वप्निल सारस्वत, डॉ॰ निशांत सिंह, समाज राजनीति और महिलाएं (दशा और दिशा), पृ॰ 161
98. बानो सरताज, चलो अब मर जायें, पृ॰ 128

99. विकास नारायण राय, लड़कियों का इंकलाब जिंदाबाद, पृ॰ 6
100. दीपक शर्मा, घोड़ा एक पैर, पृ॰ 99
101. वही
102. ज्ञानी देवी, टूटती श्रृंखलाएँ, पृ॰ 33
103. वही
104. वही, पृ॰ 34
105. वही
106. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, आज का स्त्री आंदोलन, पृ॰ 60
107. मो॰ आरिफ, फूलों का बाड़ा, पृ॰ 117
108. वही, पृ॰ 123
109. वही, पृ॰ 119
110. वही, पृ॰ 120
111. ज्ञानी देवी, टूटती श्रृंखलाएँ, पृ॰ 34
112. मो॰ आरिफ, फूलों का बाड़ा, पृ॰ 125
113. वही, पृ॰ 130
114. वही
115. विनोद कालरा, फैसला, बयान पत्रिका, मार्च 2010, पृ॰ 21
116. स्वप्निल सारस्वत, डॉ॰ निशात सिंह, समाज, राजनीति और महिलाएँ (दशा और दिशा)
117. एस॰ आर॰ हरनोट, मिट्टी के लोग, पृ॰ 108
118. ज्ञानी देवी, टूटती श्रृंखलाएं, पृ॰ 131
119. मो॰ आरिफ, फूलों का बाड़ा,, पृ॰ 115
120. केरा सिंह, महिलाओं की दशा, समाचार पत्र, दैनिक ट्रिब्यून, 18 अप्रैल, 2012, पृ॰ 8
121. सुभाष नीरव, औरत होने का गुनाह, पृ॰ 73
122. अजंली गोयल, महिलाओं को दोष देना गलत, दैनिक ट्रिब्यून, समाचार पत्र, 8 मई, 2012, पृ॰ 1
123. सन्तोष गोयल, बुक नेस्ट तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 12
124. वही, पृ॰ 13
125. सुधा अरोड़ा, मोर्चे पर स्त्री, पृ॰ 142
126. सन्तोष गोयल, बुक नेस्ट तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 13
127. चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, सौदामिनी, पृ॰ 43
128. वही, पृ॰ 44
129. रेणु त्रिपाठी, महिला सशक्तिकरण, वायदे और हकीकत, पृ॰ 124
130. सन्तोष गोयल, बुक नेस्ट तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 14
131. अंजु दुआ जैमिनी, मोर्चे पर स्त्री, पृ॰ 125
132. सन्तोष गोयल, बुक नेस्ट तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 20
133. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', वाह किन्नी, वाह, पृ॰ 69
134. वही, पृ॰ 70
135. सुधा अरोड़ा, औरत की कहानी, पृ॰ 78

136. जया जादवानी, उससे पूछो, पृ॰ 195
137. सुधा अरोड़ा, औरत की कहानी, पृ॰ 78
138. वही, पृ॰ 84
139. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 70
140. वही
141. कृष्णराम देवले, भ्रूण हत्या, समाचार पत्र, दैनिक ट्रिब्यून, 3 फरवरी, 2012, पृ॰ 8
142. स्वप्निल सारस्वत, डॉ॰ निशांत सिंह, समाज राजनीति और महिलाएँ (दशा और दिशा), पृ॰ 83
143. मुक्ता, सीढ़ियों का बाजार, पृ॰ 22
144. जया जादवानी, अन्दर के पानियों में कोई सपना कांपता है, पृ॰ 121
145. वही, पृ॰ 123
146. प्रवीण शुक्ल, महिला सशक्तिकरण, बाधाएँ एवं संकल्प, पृ॰ 94
147. रेणुका नैयर, 'बेटियों की खरीद-फरोख्त पर रोक जरूरी', समाचार पत्र, दैनिक ट्रिब्यून, 25 फरवरी, 2012, पृ॰ 8
148. रत्न कुमार सांभरिया, काल तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 43
149. वही, पृ॰ 44
150. वही
151. वही, पृ॰ 47
152. ज्ञानप्रकाश विवेक, सेवा नगर कहाँ है, पृ॰ 73
153. अंजु दुआ जैमिनी, मोर्चे पर स्त्री, पृ॰ 205
154. रत्न कुमार सांभरिया, खेत तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 119
155. वही, पृ॰ 121
156. सूरजपाल चौहान, नया ब्राह्मण, पृ॰ 107
157. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियां, पृ॰ 122
158. अंजु दुआ जैमिनी, इस द्वार से उस द्वार, पृ॰ 60
159. स्वप्निल सारस्वती, डॉ॰ निशात सिंह, समाज, राजनीति और महिला (दशा और दिशा), पृ॰ 105
160. सं॰ विकास नारायण राय, लड़कियों का इंकलाब जिन्दाबाद, पृ॰ संपादकीय
161. अल्पना मिश्र, छावनी में बेघर, पृ॰ 9
162. अंजु दुआ जैमिनी, इस द्वार से उस द्वार, पृ॰ 61
163. नीलम गोयल, स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी लेखिकाओं के उपन्यासों में अलगाव, गुरुनानक देव वि॰ वि॰, अमृतसर, पृ॰ 115
164. स्वप्निल सारस्वत, डॉ॰ निशात सिंह, समाज राजनीति और महिलाएं दशा और दिशा), पृ॰ 68
165. अल्पना मिश्र, छावनी में बेघर, पृ॰ 51
166. वही, पृ॰ 98
167. वही, पृ॰ 99
168. वही, पृ॰ 105

169. उर्मिला शिरीष, निर्वासन, पृ॰ 141
170. वही
171. आनंद प्रकाश, युग परिबोध, पत्रिका, दिसबंर, 2011, पृ॰ 5
172. इन्दु बाली, नहीं माँ नहीं तथा अन्य श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ॰ 93
173. अल्पना मिश्र, छावनी में बेघर, पृ॰ 107
174. वही, पृ॰ 110
175. वही, पृ॰ 111
176. कविता, उलटबांसी, पृ॰ 35
177. अंजु दुआ जैमिनी, सीली दीवार, पृ॰ 55
178. वही, पृ॰ 56
179. संतराम आर्य, कब मिलेगा आशियाँ, बयान पत्रिका, मार्च 2011, पृ॰ 25
180. अंजु दुआ जैमिनी, इस द्वार से उस द्वार, पृ॰ 14
181. वही
182. सुधा अरोड़ा, औरत की कहानी, पृ॰ 81
183. नूर जहीर, रेत पर खून, पृ॰ 80
184. अमरीक सिंह 'दीप', एक कोई और, पृ॰ 156
185. वही
186. रत्न कुमार सांभरिया, खेत तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 154
187. मनीषा कुलश्रेष्ठ, कठपुतलियाँ, पृ॰ 124
188. चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, सौदामिनी, पृ॰ 45
189. वही, पृ॰ 46
190. वही
191. सन्तोष गोयल, बुक नेस्ट और अन्य कहानियाँ, पृ॰ 13
192. सुधा अरोड़ा, औरत की कहानी, पृ॰ 56
193. सूर्यबाला, गौरा गुनवन्ती, पृ॰ 15
194. कमलेश कुमारी रवि, साहसी लड़की, बयान पत्रिका, सितम्बर 2011, पृ॰ 28
195. कविता, उलटबाँसी, पृ॰ 33
196. अवधेश प्रीत, हमजमीन, पृ॰ 24
197. अंजु दुआ जैमिनी, इस द्वार से उस द्वार, पृ॰ 100
198. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', वाह किन्नी वाह, पृ॰ 58
199. आनंद प्रकाश, युग परिबोध, पत्रिका दिसंबर, 2011, पृ॰ 5
200. स्वप्निल सारस्वत, डॉ॰ निशांत सिंह, समाज राजनीति और महिलाएं (दशा और दिशा), पृ॰ 92
201. विकास नारायण राय, लड़कियों का इंकलाब जिन्दाबाद, पृ॰ संपादकीय
202. उर्मिला शिरीष, निर्वासन, पृ॰ 90
203. वही, पृ॰ 91
204. अंजु दुआ जैमिनी, सीली दीवार, पृ॰ 54

205. वही
206. उर्मिला शिरीष, निर्वासन, पृ॰ 92
207. वही, पृ॰ 45
208. अनिता गोपेश, कित्ता पानी, पृ॰ 17
209. बानो सरताज, चलो अब मर जायें, पृ॰ 45
210. वही, पृ॰ 47
211. वही, पृ॰ 48
212. स्वप्निल सारस्वत डॉ॰ निशात सिंह, समाज राजनीति और महिलाएं (दशा और दिशा), पृ॰ 154
213. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ॰ 28
214. विकास नारायण राय, लड़कियों का इंकलाब जिंदाबाद, पृ॰ 63
215. दीपक शर्मा, घोड़ा एक पैर, पृ॰ 104
216. चन्द्रकरण सौनरेक्सा, सौदामिनी, पृ॰ 88
217. वही, पृ॰ 91
218. सुमति सक्सेना लाल, अलग-अलग दीवारें, पृ॰ 32
219. नमिता सिंह, नीलम, वागर्थ पत्रिका, फरवरी 2011, पृ॰ 31
220. वही, पृ॰ 38
221. रत्न कुमार सांभरिया, काल तथा अन्य कहानियां, पृ॰ 49
222. वही, पृ॰ 122
223. योगिता यादव, बस्ती से बाहर, समाचार पत्र, जनसत्ता, 7 फरवरी 2010, पृ॰ 2
224. वही, पृ॰ 3
225. रंजना जायसवाल, दूसरा थप्पड़, पाखी सृजन की उड़ान, पत्रिका, फरवरी, 2012, पृ॰ 77
226. वही
227. वही, पृ॰ 78
228. जया जादवानी, अन्दर के पानियों में कोई सपना कांपता है, पृ॰ 59
229. अमरीक सिंह 'दीप', मम्मी, ये पापा हैं, पृ॰ 156
230. वही, पृ॰ 157
231. वही
232. वही, पृ॰ 159
233. वही
234. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 74
235. वही
236. वही, पृ॰ 75
237. आशु रानी, महिला विकास कार्यक्रम, पृ॰ 2
238. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 20
239. एस॰ आर॰ हरनोट, मिट्टी के लोग, पृ॰ 37
240. इन्दु बाली, नहीं माँ, नहीं तथा अन्य श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ॰ 20

241. चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, सौदामिनी, पृ॰ 156
242. वही, पृ॰ 160
243. ज्ञानी देवी, टूटती शृंखलाएँ, पृ॰ 132
244. वही, पृ॰ 136
245. मुक्ता, सीढ़ियों का बाजार, पृ॰ 24
246. अल्पना मिश्र, छावनी में बेघर, पृ॰ 18
247. रत्न कुमार सांभरिया, खेत तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 156
248. ज्ञानप्रकाश विवेक, सेवा नगर कहां है, पृ॰ 38
249. मुक्ता, सीढ़ियों का बाजार, पृ॰ 79
250. सुधा अरोड़ा, औरत की कहानी, पृ॰ 34
251. अंजु दुआ जैमिनी, इस द्वार से उस द्वार, पृ॰ 91
252. जया जादवानी, अन्दर के पानियों में कोई सपना कांपता है, पृ॰ 113
253. अंजु दुआ जैमिनी, इस द्वार से उस द्वार, पृ॰ 90
254. सुधा अरोड़ा, औरत की कहानी, पृ॰ 78
255. सुरेखा सिन्हा, उस धूप की छाँह, पृ॰ 95
256. यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', वाह किन्नी वाह, पृ॰ 72
257. वही
258. वही, पृ॰ 73
259. मंजु वनिता, अपनी-अपनी मजबूरियाँ, पृ॰ 19
260. वही
261. अनिता गोपेश, कित्ता पानी, पृ॰ 15
262. वही, पृ॰ 17
263. वही
264. उर्मिला शिरीष, निर्वासन, पृ॰ 86
265. आशालता सिंह, मिसाल स्त्री का संघर्ष, समाचार पत्र, जनसत्ता, 6 सितम्बर, 2009, पृ॰ 2
266. कविता, नदी जो अब भी बहती है, पृ॰ 99
267. नीला प्रसाद, सातवीं औरत का घर, पृ॰ 31
268. वही, पृ॰ 35
269. इन्दुबाली, नहीं माँ, नहीं तथा अन्य श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ॰ 23
270. सुभाष नीरव, औरत होने का गुनाह, पृ॰ 72
271. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, वाह किन्नी वाह, पृ॰ 75
272. वही, पृ॰ 76
273. भानु प्रताप कुठियाला, क्या होगा माधुरी का, बयान पत्रिका, अप्रैल 2010, पृ॰ 30
274. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, वाह किन्नी वाह, पृ॰ 99
275. वही
276. वही
277. वही, पृ॰ 101

278. एस॰ आर॰ हरनोट, मिट्टी के लोग, पृ॰ 45
279. वही
280. वही
281. जया जादवानी, मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ कांधे पे अपना हल लिये, पृ॰ 43
282. जया जादवानी, अन्दर के पानियों में कोई सपना कांपता है, पृ॰ 39
283. जया जादवानी, मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ कांधे पे अपना हल लिये, पृ॰ 46
284. जया जादवानी, अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है, पृ॰ 40
285. वही, पृ॰ 103
286. वही, पृ॰ 104
287. वही, पृ॰ 41
288. वही, पृ॰ 42
289. सुधा अरोड़ा, औरत की कहानी, पृ॰ 34

क

संदर्भ सूची :

1.
2.
3.
4.
5.
6.
7.
8.
9.
10.
11.
12.
13.
14.
15.
16.
17.
18.
19.
20.
21.
22.
23.
24.
25.
26.

27.

28.

29.

30.

31.

32.

33.

34

35.

36.

37.

38.

39.

40.

41.

42.

43.

44.

45.

46.

47.

48.

49.

50.

51.

52.

53.

54.

55.

56.

57.

58.

59.

60.

61.

62.

63.

64.

65.

66.

67.

68.

69.

70.

71.

72.

73.

74.

75.

76.

77.

78.

79.

80.

81.

82.

83.

84.

85.

86.

87.

88.

89.

90.

91.

92.

93.

94.

95.

96.

97.

98.

99.

100.

101.

102.

103.

104.

105.

106.

107.

108.

109.

110.

111.

112.

113.

114.

115.

116.

117.

118.

119.

120.

121.

122.

123.

124.

125.

126.

127.

128.

129.

130.

131.

132.

133.

134.

135.

136.

137.

138.

139.

140.

141.

142.

143.

144.

145.

146.

147.

148.

149.

150.

151.

152.

153.

154.

155.

156.

157.

158.

159.

160.

161.

162.

163.

164.

165.

166.

167.

168.

169.

170.

171.

172.

173.

174.

175.

176.

177.

178.

179.

180.

181.

182.

183.

184.

185.

186.

187.

188.

189.

190.

191.

192.

193.

194.

195.

196.

197.

198.

199.

200.

201.

202.

203.

204.

205.

206.

207.

208.

209.

210.

211.

212.

213.

214.

215.

216.

217.

218.

219.

220.

221.

222.

223.

224.

225.

226.

227.

228.

229.

230.

231.

232.

233.

234.

235.

236.

237.

238.

239.

240.

241.

242.

243.

244.

245.

246.

247.

248.

249.

250.

251.

252.

253.

254.

255.

256.

257.

258.

259.

260.

261.

262.

263.

264.

265.

266.

267.

268.

269.

270.

271.

272.

273.

274.

275.

276.

277.

278.

279.

280.

281.

282.

283.

284.

285.

286.

287.

288.

289.